ॐ

भगवान और सद्गुरु

योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण

पूज्य स्वामी
श्री परमानन्द जी महाराज
(परमहंस जी)

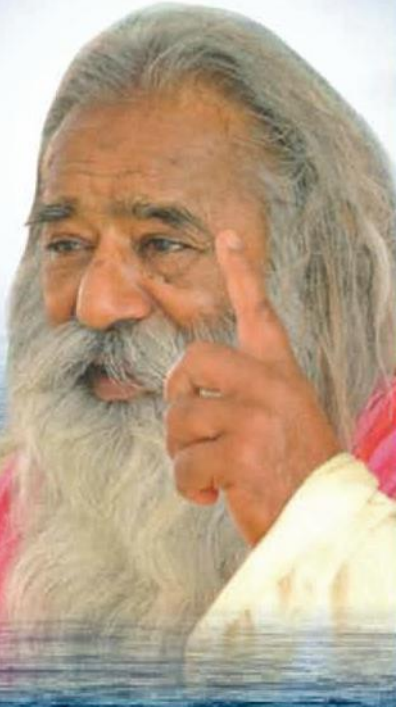

"यथार्थ गीता" के प्रणेता
स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

भगवान और सद्गुरु

प्रवचनकर्ता-

स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज

श्री परमहंस आश्रम, शक्तेषगढ़, जिला- मीरजापुर

उत्तर प्रदेश, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं- 5, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)

अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069, भारत

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया–चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्तस्प्रेरणा

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी।।

।। ॐ ।।

"आत्मने मोक्षार्थं जगत् हिताय च"

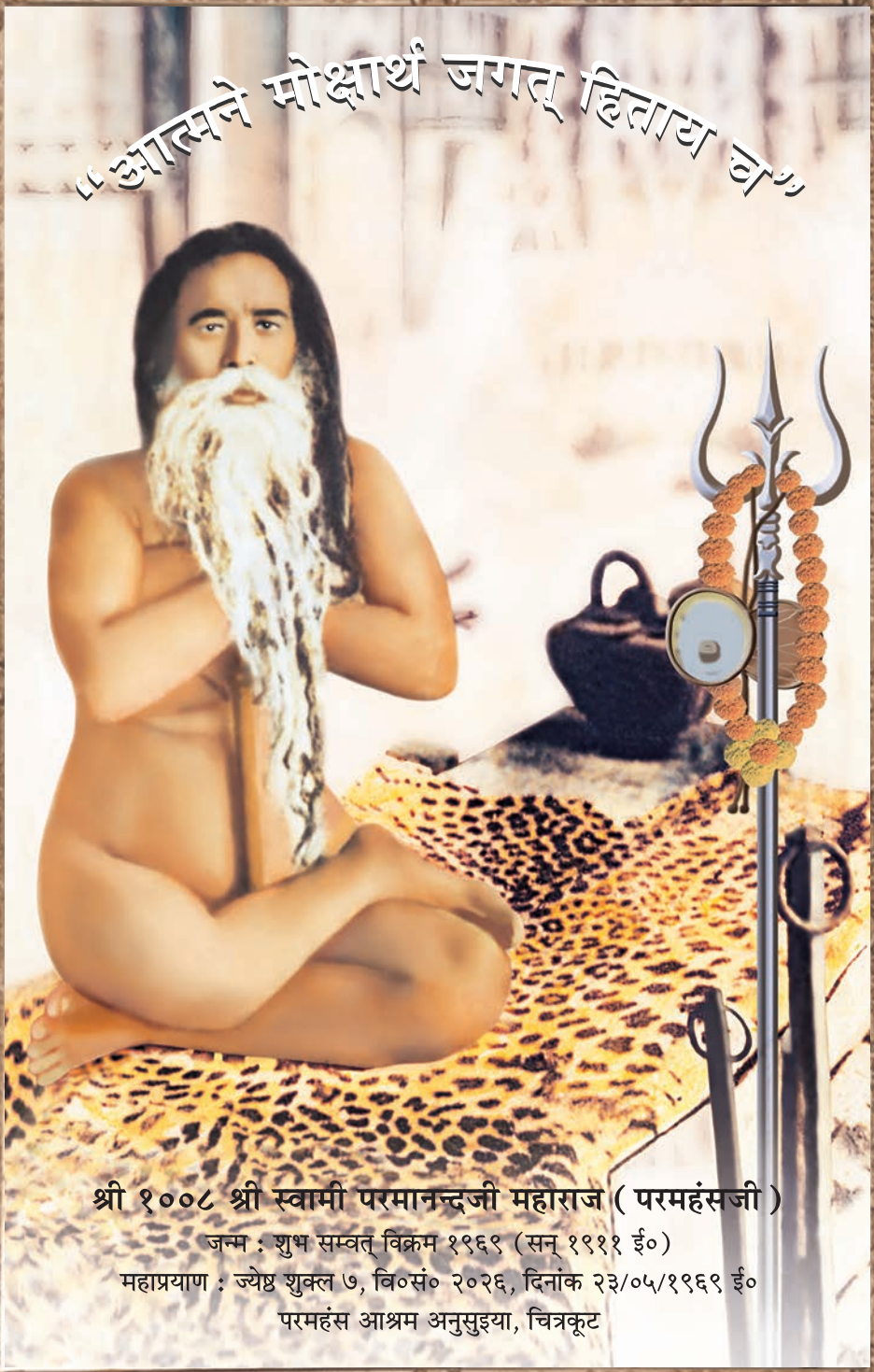

श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

भगवान और सद्गुरु

मकर संक्रान्ति 2016 के पावन पर्व पर तीर्थराज प्रयाग में कुछेक श्रद्धालुओं ने पूज्य महाराज जी से जिज्ञासा की कि भगवान और सद्गुरु के स्वरूप का विश्लेषण किया जाय! श्री स्वामी जी ने अपने प्रवचनों में इस पर प्रकाश डालते हुए कहा.....

अनादिकाल से सुख और शान्ति की शोध में आविष्कार होते रहे हैं। भौतिक प्रगति के आविष्कारों ने संघर्ष और अशान्ति को ही बढ़ावा दिया, अन्ततः पूर्वजों ने भगवान तक को खोज निकाला, जिन्हें प्राप्त करने के पश्चात् अशान्ति सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाती है और सुख-शान्ति का अक्षय स्रोत प्राप्त हो जाता है। इस शोध का क्रमबद्ध विवरण भगवान श्रीकृष्णोक्त गीता में उपलब्ध है। गीता आदिशास्त्र है। भगवान ने कहा कि इस अविनाशी योग को मैंने सूर्य से कहा था, सूर्य ने मनु से कहा (जिनसे उत्पन्न होने के कारण सभी मानव, मनुज या मनुष्य कहे जाते हैं इसलिए गीता सृष्टि का आदिशास्त्र है), मनु ने इक्ष्वाकु से कहा, इक्ष्वाकु से राजर्षियों ने जाना। कुछ काल पश्चात् उस ज्ञान की विस्मृति आ गयी तो द्वापर में भगवान ने उसी ज्ञान को पुनः अर्जुन से कहा। गीता महाराजा मनु को विरासत में मिली थी जबकि जीवन के उत्तरार्द्ध में होनेवाले प्रलय के समय उन्होंने वेद का संकलन किया था इसलिए भी गीता आदिशास्त्र है। वेद का ही शीर्ष उपनिषद् हैं। उपनिषद् के ऋषि गीता के ही पथ पर चलनेवाले पथिक हैं। शास्त्रों में भी वही है। महर्षि पतंजलि ने भी योगदर्शन के रूप में गीता को ही अभिव्यक्त किया है। **'ब्रह्मसूत्र पदैश्चैव.....'** ***(गीता, 13/4)***– ब्रह्मसूत्र के पदों में भी गीता की ही साधना बतायी गयी है।

इस आदिशास्त्र गीता के विस्मृत हो जाने से प्राचीनकाल के अनेक गरिमामय शब्द अपने मूल आशय से दूर होते जा रहे हैं। भगवान, अवतार,

गुरु और योग ऐसे ही शब्द हैं। भगवान के सम्बन्ध में मान्यता है कि आकाश में अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न किसी मानवेतर सत्ता का प्रकट होना, अन्तर्धान होना, किन्तु आज तक के मानवीय इतिहास में ऐसा कोई भगवान नहीं हुआ। आर्षग्रन्थों में इस प्रकार के अवतरण का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। वास्तविकता यह है कि भगवान का अवतार किसी लगनशील साधक के हृदय में होता है और सबके हृदय में उसके अवतरण की व्यवस्था है। इसी प्रकार योग शब्द भी तरह-तरह के टोने-टोटके, सिद्धियों, चमत्कारों के प्रदर्शन, व्यायाम तथा उपचारों का व्यापार बनकर रह गया है, जबकि आत्मा का परमात्मा से मिलन योग है जिसके लिए गीता में नियत कर्म का आचरण बताया गया है, जिसे महर्षि पतंजलि चित्तवृत्ति-निरोध के लिए आवश्यक मानते हैं। इसी प्रकार पहले गीतोक्त नियत कर्म की साधना, इस साधना के दीर्घकालीन सतत अभ्यास से भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन, स्वरूप की प्राप्ति, उसके साथ ही भगवान का संस्पर्श, उनमें विलय और उनमें स्थिति प्राप्त होने के पश्चात् मिलनेवाला दुर्लभ 'गुरु'पद आज बोलचाल का साधारण सम्बोधन बनकर रह गया है। भगवत्पथ में पूर्णता का मापदण्ड जब से आचरण के स्थान पर शैक्षिक योग्यता और मौखिक वाद-विवाद से होने लगा, वर्ण-व्यवस्था जन्मना जातिप्रथा में बदल गयी, तब से ब्राह्मण गुरु कहलाने लगे। 25–50 हजार गुरु प्रतिदिन जन्म लेने लगे। इतना ही नहीं, पण्डा के घर जन्म लेनेवाला भी गुरु, भले ही वह केवट, माली, कोरी कुछ भी हो। शिशु कक्षा से विश्वविद्यालय तक के शिक्षक गुरु कहे जाने लगे। आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण करनेवाला गुरु! ऐसे ही डिग्रीधारी, गद्दियों के व्यवस्थाकार गुरु बनकर धर्म का निर्णय देने लगे हैं। गुरुओं की इसी भीड़ से अपने को अलग करने के लिए संत कबीर इत्यादि महापुरुषों ने गुरु के लिए सतगुरु शब्द का प्रयोग किया। सत्य एकमात्र परमात्मा की उपलब्धिवाले सतगुरु! सत्य परमात्मा में स्थितिवाले सतगुरु! सत्य एकमात्र परमात्मा के संवाहक सद्गुरु!

सद्गुरु एक अत्यन्त दुर्लभ स्थिति है। रामचरितमानस में है– **'नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रत धारी॥'** *(7/53/1)* पार्वती जी कहती हैं– हे त्रिपुरारि! सुनिए, हजारों मनुष्यों में कोई एक धार्मिक अभिरुचि का होता है। **'धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥'**– करोड़ों धर्मात्माओं में कोई विषयों से विरक्त और वैराग्यवान होता है। **'कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥'**– करोड़ों विरक्तों में किसी एक को ज्ञान की प्राप्ति होती है। **'ग्यानवन्त कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥'** करोड़ों ज्ञानियों में में कोई एक जीवनमुक्त हो पाता है। **'तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी॥'**– ऐसे हजारों जीवन्मुक्तों में भी ब्रह्म में लीन विज्ञानी अर्थात् अनुभवी उपलब्धिवाला पुरुष और भी दुर्लभ है। **'धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवन मुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥'** इस प्रकार धर्मात्मा, वैराग्यसम्पन्न, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन विज्ञानियों में भी **'सब तें सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥'**– मद और माया से परे, रामभक्ति से आप्लावित, जो दूसरों में भी भक्ति जागृत कर सकते हों, भक्ति प्रदान कर सकते हों– यही सद्गुरु हैं। सन्त कबीर का भी यही निर्णय है– **'संतो! भगती सद्गुर आनी।'**

इसे और भी स्पष्ट करते हुए भगवान श्रीराम ने अनुज लक्ष्मण को समझाया– **'भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होइ अनुकूला॥'** *(मानस, 3/15/4)*– हे तात! भक्ति अनुपम सुख का स्रोत है किन्तु वह तभी मिलती है जब सन्त अनुकूल हों। **'भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पन्थ मोहि पावहिं प्रानी॥'** लक्ष्मण! मैं तुम्हें भक्ति का साधन बताता हूँ। यह साधन सुगम है जिससे प्राणी मुझे प्राप्त कर लेते हैं। **'प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती।'** भक्ति का पहला सोपान है विप्र के चरणों में प्रीति! यदि विप्र का अर्थ ब्राह्मण जाति होता तो भारत से बाहर विप्र कहाँ मिलते? इसी को दृष्टि में रखते हुए गोस्वामी जी ने विप्र की परिभाषा

दी– **'बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।।'** *(मानस, 1/1/3)*– सर्वप्रथम मैं पृथ्वी के देवता विप्र के चरणों की वन्दना करता हूँ जो मोह से उत्पन्न सारे संशयों को हर लेते हैं। जो स्वयं मोह से मुक्त हों। और आपको भी मोह से मुक्त कर दें– यही विप्र की परिभाषा है, यही सद्गुरु के लक्षण हैं– **'सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ।'** *(मानस, 4/17)*। ऐसा ब्राह्मण विश्व के किसी भी देश में, किसी भी नस्ल या कबीले में जन्म पा सकता है।

इस प्रकार भक्ति की पहली सीढ़ी है विप्र के चरणों की पूजा। भक्ति का दूसरा सोपान है **'निज निज कर्म निरत श्रुति रीती।'** कर्म माने नियत कर्म! जैसा आदिशास्त्र गीता में है कि योगविधि यज्ञ है, उसे क्रियान्वित करना कर्म है। जिसमें कर्म करने की जैसी क्षमता है– आरम्भ में कर्म सेवा से ही शुरू होता है, फिर इन्द्रिय-संयम में पहुँचता है, संघर्ष झेलने की क्षमता आती है, धीरे-धीरे मन का शमन, इन्द्रियों का दमन होता जाता है, अनुभवी जागृति स्वभाव में ढल जाती है। इस प्रकार अपनी क्षमता के अनुसार कर्म में प्रवृत्त होना। यही **'श्रुति रीती'** अर्थात् वेदोक्त रीति है। **'एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा।।'** इस अवस्था में विषयों से वैराग्य और भगवान के स्वरूप को हृदय में धारण करने की क्षमता आ जाती है। नवधा भक्ति, भक्ति के सारे लक्षण उसमें प्रवाहमान हो जायेंगे। **'संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा।।'** संतों के चरणों में अत्यधिक प्रीति, नियम में दृढ़ता हो, भगवान पर ही सर्वतोभावेन आश्रित होना– **'मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।।'** मेरे गुणगान में रोमांच होने लगे, आँखों में अश्रुपात हो, **'काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरन्तर बस मैं ताके।।'** *(मानस, 3/15/12)* हे तात! ये गुण जिनके पास हैं, मैं निरन्तर उन्हीं के वश में रहता हूँ। **'बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करहिं निःकाम।'** निष्काम भाव से जो भजन करते हैं, **'तिन्हके हृदयँ कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम।।'** *(मानस, 3/16)* उनके

हृदय-कमल में मैं सदा विश्राम किया करता हूँ। **'भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन सिर नावा॥'** यही भक्ति है, यही योग है। इसे सुनकर लक्ष्मण जी अत्यन्त हर्षित हुए।

नानापुराणनिगमागममर्मज्ञ गोस्वामी तुलसीदासजी शास्त्रों के और संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने योग, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति इत्यादि सबका सारांश लोकभाषा में प्रस्तुत किया। उस समय के आचार्य उनके पीछे पड़ गये कि यह ग्राम्यभाषा में लिखकर सनातन-धर्म नष्ट कर रहे हैं। गोस्वामीजी ने कहा कि हमने तो सनातन का नाम ही नहीं लिया। किसी ने आक्षेप किया कि हिन्दू-धर्म नष्ट कर रहे हैं, तो उन्होंने कहा कि हमने हिन्दू शब्द का भी प्रयोग नहीं किया। भगवान के सहस्रों नाम हैं। उन्होंने हिन्दू और सनातन इन दो नामों को छोड़कर शेष नामों से भगवान की प्रशस्ति का गायन किया। आज गोस्वामीजी विरचित रामचरितमानस हिन्दू-धर्म एवं संस्कृति की आधारशिला है।

● (1) इन महापुरुष ने रामचरितमानस में स्थान-स्थान पर भगवान के अवतरण विधियों का चित्रण किया है। उदाहरण के लिए– भगवान के दरबार में जय और विजय द्वारपाल थे। उन्होंने सनकादि ऋषियों को दरबार में प्रवेश करने से रोक दिया। ऋषियों ने उन्हें पृथ्वी पर तीन जन्मों तक रहने का शाप दिया। जय और विजय हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष हुए। भगवान ने वाराह रूप से एक का वध किया तो नरसिंह रूप से दूसरे को मारा। वे ही रावण और कुम्भकर्ण हुए, दन्तवक्त्र और शिशुपाल हुए। इस प्रकार अवतार का प्रकरण सम्पन्न हुआ।

प्रतीत होता है कि सृष्टि भगवान को भूल चली थी इसलिए भगवान ने अपने सेवकों को भेजकर उन्हें सचेत कर दिया। लोग 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' करने लगे तो भगवान ने सुनवाई कर ली। प्रह्लाद इत्यादि भक्तों के माध्यम से भगवान की महिमा सर्वत्र फैल गयी। अपने सेवकों को अधम योनि से छुटकारा दिलाकर पुनः अपने धाम बुला लिया। कथा आती है कि जब शिशुपाल का वध हुआ तो विमान आया। वह उस पर बैठकर जाने लगा। मार्ग में उसे

नारदजी मिले। शिशुपाल पूर्वजन्मों का जय था। नारदजी ने कहा– जय कहाँ थे? कहाँ चले? जय ने कहा– देवर्षि! लगता है मैं सो रहा था। आँखें खुली तो भगवान समक्ष थे। उन्होंने कहा, 'माता लक्ष्मी तुम्हें बुला रही हैं', उनकी सेवा में धाम जा रहा हूँ। शिशुपाल– जिसने भगवान को अपशब्द कहा, चक्र से जिसका गला कट गया, उसको कुछ पता ही नहीं। '**मोह निसाँ सब सोवनिहारा।**'– वह जगत्रूपी रात्रि में अचेत था। भगवान ने उन संस्कारों को काट दिया तो जग गया। अब वह जा रहा है धाम! यह सब एक रूपक है, अवतरण-विधि है।

आवागमन से उद्धार करने की विधि का नाम अवतार है। मत्स्य, कच्छप, वाराह, नरसिंह इनकी पूजा का सर्वत्र प्रचलन नहीं है, जबकि ये अवतार हैं। वास्तव में ये कथानक अवतरण-विधियाँ हैं, चारों साधना-पद्धतियाँ हैं। अवतारों की शृंखला में अधिकांश महात्मा हैं जो भजन करके आत्मा का उत्कर्ष करते-करते आत्मसाक्षात्कार करके परमात्मा का दर्शन, उनका स्पर्श, उनमें विलय और उनमें स्थिति पा गये और अवतार कहलाये। भगवान राम और भगवान श्रीकृष्ण भी उन्हीं अवतारों में से हैं।

● (2) रामचरितमानस में भगवान राम के प्राकट्य की विधि का चित्रण है। सभी देवता व ऋषि जब रावण से त्रस्त हो गये तो पृथ्वी व्याकुल होकर ब्रह्मा के पास गयी। ब्रह्मा ने समझ लिया कि ये क्यों आये हैं?

ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।

(मानस, 1/184, छन्द)

उन्होंने कहा– जिसकी तुम दासी हो, वह अविनाशी है, हमारा तुम्हारा रक्षक वही है, उनके पास जाओ। किन्तु ब्रह्मा भी यह नहीं जानते थे कि भगवान रहते कहाँ हैं? सभी अनुमान लगाने लगे। किसी ने कहा– भगवान बैकुण्ठ में रहते हैं तो किसी ने उनका निवास क्षीरसागर बताया। शंकरजी ने कहा कि उस समाज में मैं भी था। अवसर मिलने पर उन्होंने बताया कि भगवान तो सर्वत्र हैं, यहाँ भी हैं। उनको खोज निकालने की विधि प्रेम है – '**प्रेम तें**

प्रकट होहिं मैं जाना'। प्रेमपूरित हृदय से सबने स्तुति की तो आकाशवाणी हुई कि दशरथ और कौशल्या के यहाँ मैं अवतार लूँगा। समय आने पर भगवान प्रकट हुए। पहले आकाश में देवताओं ने खुशियाँ मनायी, तत्पश्चात् अयोध्यावासियों ने उत्सव मनाया। '**पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥**', '**कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गंभीर जानि जेहिं देखा॥**'– भगवान की नाभि में चराचर जगत् उत्पन्न और विलीन होता रहता है इसीलिए नाभि गंभीर है। इसे वही जान पाता है जिसने इसे देखा है अर्थात् यह प्रत्यक्ष दर्शन है। '**रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥**' अर्थात् भगवान का वह स्वरूप स्वप्न में भी देखा जा सकता है।

सुख संदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसुचरित पुनीत॥ *(मानस, 1/199)*

वह भगवान सुख के समूह हैं, शिशुचरित कर रहे हैं। इन्द्रियों से परे, मन से परे, बुद्धि से परे, वाणी से परे, ज्ञान से परे। यदि वहाँ कोई शिशु खेल रहा होता तो इन्द्रियाँ अवश्य देखतीं कि पीली झगुली किसने पहन रखा है। जब वह इन्द्रियों से अतीत है तो किसने कैसे देखा? यह अनुभवगम्य है। '**एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुख दाता॥**'– इस विधि से भगवान राम जगत् के माता हैं, पिता हैं और कोसलपुरवासियों के सुखदाता हैं। विचारणीय है कि छोटा शिशु कभी किसी का माता-पिता हुआ है। यह भजन की जागृति का चित्रण है। भगवान के प्रादुर्भाव का यह आरम्भिक स्तर है। ज्योंही भगवान का प्रादुर्भाव होता है, साधक की परवरिश भगवान द्वारा होने लगती है। यही भगवान का माता-पिता होना है। भगवान शिव, जिन्होंने ब्रह्मा की सभा में कहा था कि भगवान प्रेम से प्रकट होते हैं, उन्होंने जन्म के समय कहा–

जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्हकी यह गति प्रगट भवानी॥
(मानस, 1/199/2)

जिन्होंने भगवान के चरणों में प्रीति जोड़ ली, उनके लिए यह गति आज भी प्रत्यक्ष है, सुलभ है अर्थात् अवतार किसी योगी के हृदय में होता है। यह है रामचरितमानस! एक तो त्रेता में घटना घटी, वह इतिहास है; और दूसरा मानस मन के अन्तराल में है– **'रचि महेश निज मानस राखा।'** शंकरजी ने इसे अपने मन के अन्तराल में रखा था।

राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सतसंगति अति प्यारी॥
गुर पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई॥

(मानस, 7/127/6-7)

इस अवतरण में दसों इन्द्रियों की निरोधमयी वृत्ति ही दशरथ है, विषयों में तो निरोध होता ही नहीं– **'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।'** जहाँ निरोध हुआ, संयम सधा, सुरत भगवान से जुड़ी तो भक्ति जागृत हुई। भक्तिरूपी कौशल्या! **'सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद।'** भगवान कौशल्या की गोद में आ गये, जागृत हो गये। विज्ञानरूपी राम! जो आत्मा प्रसुप्त है, हृदय से जागृत होकर अनुभव प्रसारित करने लगती है। यह अवतार है जो किसी-किसी योगी के हृदय में होता है। भगवान पहले शिशुरूप में होते हैं, क्रमशः योगरूपी जनकपुर में पहुँचते हैं जहाँ ध्यानरूपी धनुष है, चित्तचढ़रूपी चाप है। चित्त की चंचलता का क्रम टूट जाता है, ध्यान की स्थिति बन जाती है तहाँ शक्तिरूपी सीता, राम शक्ति से संयुक्त हो जाते हैं। और जब तक चौदह वर्ष का वनवास अर्थात् अध्यात्म की चौदह भूमिकाएँ पूर्ण नहीं हो जाती, तब तक भाव ही श्रेष्ठ होता है, तब तक भरत राजा हैं। साधक को श्रद्धाभाव से डूबकर भजन में लगना है तब तक सीता भी अग्नि में समाहित रहती हैं, योगाग्नि में प्रसुप्त रहती हैं, मोहरूपी रावण से आवृत्त रहती हैं। भगवान ने उनसे कहा था–

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहुँ निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥

(मानस, 3/23/1-2)

भगवान ने असंख्य निशाचरों का सर्वनाश कर दिया, रक्त की नदियाँ बहने लगीं, लाशें तैरने लगीं। यह ललित है या वीभत्स? वास्तव में आसुरी सम्पद् समूल नष्ट हो गयी और दैवी सम्पद् प्रवाहित हो गयी, यही लालित्य है।

इसी क्रम में है कि राक्षसों के समाप्त हो जाने पर रावण दुर्ग से निकला तो उसके साथ अपार सेना थी। सब तो मर गये थे। ये अपार कहाँ से आ गये? वस्तुतः मोहरूपी रावण! **'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।'**– मूल विद्यमान है तो उसके अन्तराल में सम्पूर्ण आसुरी सम्पद् विद्यमान है। अंकुर फूटते जायेंगे, मोहजन्य सृष्टि पुनः ज्यों-की-त्यों हो जायेगी। यदि मूल कट गया तो आसुरी सम्पद् सदा के लिए समाप्त हो जाती है। उस समय योगाग्नि से परम पराकाष्ठावाली शान्ति अर्थात् शक्तिरूपी सीता प्रकट हो गयीं। उस समय **'राम राज बैंठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका।।'** तीनों लोकों में राम का एकछत्र साम्राज्य छा गया, अवतार का प्रयोजन पूर्ण हो गया।

जब कुशलतापूर्वक लव लग गयी, राम भी रथ में सो गये– **'नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना।'** जब हम भगवान से अलग थे तो भगवान अनुभव देते थे, अब भगवान में स्थिति मिल गयी तो कौन किसको अनुभव दे! यह है मानस। इस प्रकार अवतार योगी के हृदय में होता है। हृदय से जागृत होकर भगवान साधक को ले चलते हैं और अपना दर्शन, स्पर्श, प्रवेश और अपने में स्थिति दिलाकर भगवद्स्वरूप की प्राप्ति करा देते हैं, तब वही महापुरुष योगेश्वर हैं, योगप्रदाता हैं, वही सद्गुरु हैं, वही समदर्शी और समवर्ती हैं। उन्हीं के द्वारा कल्याण होता है। भगवान का संदेश इन महापुरुषों के द्वारा ही मिलता आया है। सद्गुरु एक स्थिति है। इसी स्थिति के सद्गुरुओं की महिमा बताते हुए संत सहजोबाई ने कहा–

हरि ने जनम दियो जग माहीं, गुरु ने आवागमन छुटाहीं।

भगवान ने हमें संसार में पैदा किया, किन्तु गुरु ने संसार में पुनः-पुनः जन्म लेने और मरने के कष्ट से मुक्ति दिला दी।

हरि ने करम भरम में गेरी, गुरु ने काटी ममता बेरी।

भगवान ने जन्म अवश्य दिया किन्तु करम के साथ-साथ भरम में भी उलझा दिया, जबकि गुरु महाराज ने ममता की उस बेड़ी को काट दिया।

हरि ने पाँच चोर दियो साथा, गुरु ने लइ छुड़ाइ अनाथा।

भगवान ने पाँचों ज्ञानेन्द्रियों में चोर बिठा दिये जो अनाथ जानकर मुझे लूटते जा रहे थे, किन्तु गुरुजी ने मुझे उनसे छुड़ा लिया।

हरि ने मो सो आप छिपायो, गुरु दीपक दै ताहि दिखायो।

हरि ने जन्म तो दिया लेकिन अपने आपको छिपा लिया, जबकि गुरु ने दीपक देकर दिखा दिया कि यह रहे भगवान!

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ, गुरु के सम हरि को न निहारूँ।

भगवान का त्याग किया जा सकता है पर गुरु का विस्मरण नहीं होना चाहिए। गुरु की महिमा बताते हुए उन्होंने कहा–

हरि की कृपा होय तो, नहीं होय तो नाहिं।
पै गुरु किरिपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जाहिं।।

(सहजप्रकाश, दोहा 11)

भगवान की कृपा हो तो ठीक और न भी हो तो कोई विशेष क्षति नहीं है, लेकिन गुरु की कृपा और दया के बिना सारी बुद्धि धरी की धरी रह जाती है। यही अनुभूति सन्त कबीर की भी है। भजन करते-करते उनके समक्ष एक ऐसा स्तर भी आया कि गुरु तो थे ही, भगवान भी आ गये। उनके समक्ष समस्या हो गयी–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दिया लखाय।।

गुरु और गोविन्द दोनों खड़े हैं, प्रणाम किसे करें? कबीर कहते हैं कि मैं उन गुरुदेव के चरणों में अपने आपको अर्पित करता हूँ जिन्होंने गोविन्द

को दिखा दिया। कबीर ने पहले गुरु महाराज को ही प्रणाम किया क्योंकि भगवान चले भी जायेंगे तो कोई क्षति नहीं है। भगवान मिले ही कब थे, उन्हें तो गुरु ने दिखाया था। कदाचित् वे चले जायेंगे तो गुरु महाराज दीपक देकर पुनः दिखा देंगे कि वह भगवान हैं। भगवान यदि परम धाम हैं तो सद्गुरु ही प्रवेश-द्वार हैं, पूर्तिपर्यन्त पथ हैं, भजन की जागृति से भगवत्-प्राप्तिपर्यन्त सद्गुरु ही माध्यम हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं–

श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।।
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।।
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

गुरु महाराज के पद-नख मणिगन की ज्योति के समान हैं जिनका स्मरण करते ही हृदय को दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाती है जिससे भगवान राम के चरित्र के प्रति सूझ पैदा हो जाती है। देखेंगे गुरु के पद नख और सूझेगा रामचरित।

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जो बिरंचि संकर सम होई।।

गोस्वामीजी भी वही कहते हैं जो प्राप्तिवाले सभी सन्तों की अनुभूति रही है। आदि शंकराचार्य ने भी प्रश्नोत्तरी में बताया– **'कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः।'**– सृष्टि में पूजनीय कौन है? उन्होंने उत्तर दिया– शिवतत्त्व में स्थित महापुरुष। यह सभी वही तथ्य दोहरा रहे हैं जो आदिशास्त्र गीता में है।

● (3) **ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।**
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। ***(गीता, 14/27)***

उस अविनाशी ब्रह्म का, अमृत का, शाश्वत-धर्म और अखण्ड एकरस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ। अब श्रीकृष्ण तो चले गये, वह आश्रय तो चला गया, वह आश्रय अब कहाँ मिलेगा? लेकिन नहीं, गीता में स्थान-स्थान पर भगवान ने अपना परिचय दिया है कि वे योगेश्वर हैं, स्वरूपस्थ महापुरुष हैं अर्थात् यदि आपको अव्यक्त, अविनाशी ब्रह्म, शाश्वत-धर्म और अखण्ड एकरस

आनन्द की आवश्यकता है तो किसी तत्त्वस्थित, अव्यक्तस्थित महापुरुष की शरण जायँ। उनके द्वारा ही यह सम्भव है।

● (4) अर्जुन ने कहा– **'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'** *(गीता, 2/7)*– भगवन्! मैं आपका शिष्य हूँ। यहाँ श्रीकृष्ण सद्गुरु हैं और अनुरागी अर्जुन शिष्य। गीता गुरु-शिष्य संवाद है। इसे श्रीकृष्णार्जुन संवाद कहें या गुरु-शिष्य संवाद; एक ही बात है। अव्यक्त ब्रह्म तो बोलता नहीं, वह जब भी उपदेश देगा तो किसी माध्यम से ही देगा। सद्गुरु वही माध्यम हैं।

● (5) अर्जुन को उपदेश करते हुए दसवें अध्याय में भगवान ने कहा कि सूर्य में तेज मैं हूँ, चन्द्रमा में शीतलता मैं हूँ, सप्तर्षि मैं हूँ इत्यादि लगभग 70-80 विभूतियों में भगवान ने अपना परिचय दिया। अर्जुन ने कहा– भगवन्! जो कुछ भी आप कहते हैं, सत्य है, किन्तु आपकी विभूतियों को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। मेरे द्वारा वह सब देखा जाना सम्भव हो तो कृपा करें। भगवान ने कहा– अर्जुन! तुम मेरे प्रिय सखा हो, अनन्य भक्त हो, ऐसा कुछ भी नहीं जो मैं तुझे न दे सकूँ। लो, मेरे इस स्वरूप को देखो। जगत् में सर्वत्र व्याप्त मेरे स्वरूप को देखो। आदित्यों, वसुओं, रुद्रों तथा अश्विनीकुमारों को देखो। अर्जुन आँखें फाड़कर देखता ही रह गया, उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। सहसा भगवान रुक गये, बोले– अर्जुन! तुम मुझे इन आँखों से नहीं देख सकते, अतः मैं तुम्हें वह दृष्टि देता हूँ जिससे तुम मुझे देख सको। जहाँ दृष्टि का संचार हुआ, अर्जुन काँपने लगा। गदगद् स्वर में स्तुति करते हुए उसने कहा– प्रभो! मैं न तो आपके आदि का निर्णय कर पा रहा हूँ, न अन्त का और न मध्य का। सर्वत्र हाथ-पैर और मुखवाले आपको मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। आपमें कमल के आसन पर बैठे हुए ब्रह्मा, महादेव, समस्त ऋषियों तथा दिव्य सर्पों को देख रहा हूँ। उसे सम्पूर्ण सृष्टि भगवान के अन्तराल में दिखाई पड़ी। जब आसन्न युद्ध महाभारत का दृश्य आया तो वह और भी घबरा गया। उसने कहा– वह सूतपुत्र कर्ण, जयद्रथ, भीष्म, द्रोण, दुर्योधन इत्यादि योद्धा दिव्यास्त्रों की वर्षा करते हुए बड़े वेग से आपके मुख में प्रविष्ट हो रहे

हैं। अमित प्रभाववाले आप कौन हैं? भगवान ने बताया– मैं बढ़ा हुआ काल हूँ। तुम युद्ध नहीं करोगे तब भी ये जीवित नहीं बचेंगे। मेरे द्वारा ये पहले ही मारे जा चुके हैं, तू निमित्त मात्र हो जा और यश प्राप्त कर।

विराट्-रूप देखते ही अर्जुन अपनी क्षुद्र भूलों के लिए उनसे क्षमा-याचना करने लगा। स्तुति करते हुए उसने कहा– **'त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं.....'** ***(गीता, 11/18)***– भगवन्! आप अविनाशी पुरुष हैं, जानने योग्य परम देव हैं, शाश्वत-धर्म के गोप्ता हैं, रक्षक हैं, सनातन पुरुष हैं और **'गुरुर्गरीयान्'** ***(गीता, 11/43)***– गुरुओं के भी परम गुरु हैं, अति पूजनीय हैं। वस्तुतः प्रत्येक शिष्य जब गुरु में अलौकिक विभूतियों की अनुभूति पाता है तभी गुरु में उसका विश्वास स्थिर होता है और तभी वह अर्जुन की तरह कहता है कि **'करिष्ये वचनं तव'** ***(गीता, 18/73)***– भगवन्! अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

भगवान तो शान्त, सम एवं निरपेक्ष सत्ता हैं– **'समोऽहं सर्वभूतेषु....'** ***(गीता, 9/29)***। भगवान की वह भगवत्ता सबको समान रूप से प्रदान कर दे, यह क्षमता सद्गुरु में होती है। भगवान श्रीकृष्ण भी वही थे। विरह-वैराग्य में डूबकर गीतोक्त साधना द्वारा क्रमशः चलकर भगवान की भगवत्ता जो प्राप्त कर लेता है अर्थात् उनका दर्शन, स्पर्श और उनमें स्थिति प्राप्त कर लेता है, वही सद्गुरु है। पहले भगवत्ता प्राप्त होती है, तत्पश्चात् उसके प्रसारण की क्षमता! सद्गुरु एक ऐसी ही स्थिति है। जब से क्रिया एवं साधना का स्थान वाचिक शास्त्रार्थ ने ले लिया, गरिमामण्डित 'गुरु' शब्द को अत्यन्त हलका बना दिया। तभी से यह भ्रम होने लगा कि भगवान बड़े या गुरु? साधना तो की नहीं, भगवान मिले नहीं, गुरु बन बैठे!

● (6) भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– **'यदक्षरं वेदविदो वदन्ति.....'** (गीता, 8/11)– वेदविद् जिस पद को **'अक्षरम्'**–अक्षय कहते हैं, वीतराग महात्मा जिसमें प्रवेश पाते हैं, जिसे चाहनेवाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस पद को मैं तेरे लिए संक्षेप से कहूँगा कि वह पद है क्या, कैसे पाया जाता

है?–इसके लिए '**सर्वद्वाराणि संयम्य....**' *(गीता, 8/12)*– इन्द्रियों के सभी द्वारों को संयमित कर, मन को हृदय में रोककर जो पुरुष '**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् .....**' *(गीता, 8/13)*– 'ओम्' इतना ही, जो अक्षय ब्रह्म का परिचायक है, इसका जप तथा मेरा स्मरण करता हुआ देहाध्यास का त्याग कर जाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

यहाँ भगवान ने जपने के लिए नाम तो ओम् का और ध्यान अपना बताया, जैसा प्राप्तिवाले प्रत्येक महापुरुष बताते हैं। ध्यान सद्गुरु का ही किया जाता है। यही विधि है। वास्तव में प्राप्ति के पश्चात् हर महापुरुष का नाम वही हो जाता है जिसे वह प्राप्त है, जिसमें वह विलीन एवं स्थित है– '**सुरसरि मिलें सो पावन जैसे। ईस अनीसहि अन्तरु तैसे॥**' *(मानस, 1/69/2)*

साधक के समक्ष प्रायः यह समस्या आती है कि ध्यान किसका करें, पाना तो है परमात्मा को! इसके लिए भगवान कहते हैं–

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ *(गीता, 8/14)*

अनन्य चित्त से जो मेरा नित्य स्मरण करता है, उस योगी के लिए मैं सुलभ हूँ। आपके सुलभ होने से लाभ?–

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ *(गीता, 8/15)*

मुझे प्राप्त कर वे दुःखों की खानि क्षणभंगुर पुनर्जन्म को प्राप्त न होकर परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं। इस पुनर्जन्म की सीमा में आते कौन-कौन हैं?

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ *(गीता, 8/16)*

अर्जुन! सृष्टिनिर्माता विधाता से लेकर कीट-पतंगादि सभी पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं किन्तु मुझे प्राप्त होने पर पुरुष का पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिए विधाता और दिति, अदिति की संतानें देवता इत्यादि किसी के इष्ट

नहीं हो सकते; क्योंकि वे नश्वर हैं। गीता में बार-बार आया है कि हृदय में दैवी सम्पद् का उत्कर्ष ही देवपूजा है (देखें, यथार्थ गीता)। इसी गीता का अनुवाद रामचरितमानस है कि **'बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना।', 'दानव देव ऊँच अरु नीचू।'**– दानव-देव, सुख-दुःख, दिन-रात, पाप-पुण्य इत्यादि विधाता का प्रपंच है। एक ओर सद्गुण हैं तो दूसरी ओर दुर्गुणों की नामावली। इनमें से किसी का भी स्पर्श किया तो हमने प्रपंच को ही छुआ है, सत्य को नहीं। **'हम देवता परम दुख पायो।'**– देवता तो स्वयं दुःखी हैं, आपको सुख कहाँ से दे देंगे? इसलिए उनकी पूजा का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

पूजन तो एकमात्र परमात्मा का ही करना चाहिए। किन्तु भगवान को हमने देखा नहीं, उनका ध्यान कैसे धरें? मूर्ति भी कलाकारों के मन की उपज है। जिस देश-प्रदेश का कलाकार, वैसी मूर्ति बना देता है। किसी ने सुना कान में कुण्डल, वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि तो वैसा ही बना दिया। क्या कलाकार ने कौस्तुभ देखा है? कुछ लोग आकाश की ओर देखते हैं कि अन्तहीन आकाश में कहीं भगवान होगा, यह भी एक कल्पना मात्र है। तब ध्यान किसका किया जाय?

महापुरुषों ने जिसके ध्यान के लिए कहा, हमें उधर ध्यान देना चाहिए–

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति पूजामूलं गुरोर्पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

ध्यान का मूल है गुरु का रूप, पूजा का मूल है गुरु के चरण-कमल, मंत्र हैं गुरु के वाक्य और मोक्ष का मूल है गुरु की कृपा। **'गुरोर्वाक्यं सतत गेयं न ज्ञेयं शास्त्रकोटिभिः।'** गुरु का एक वचन मिल जाय तो वह करोड़ों शास्त्रों से बढ़कर है क्योंकि आप अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय लेंगे और गुरु के समक्ष आँखों देखा हाल है। ईश्वर-पथ की पढ़ाई में भौतिक शिक्षा बहुत काम नहीं देती क्योंकि उसे भगवान स्वयं पढ़ाते हैं।

आरम्भिक जन्मों में कागभुसुण्डि की यही स्थिति थी। उनका जन्म अवध में हुआ था। वह शूद्र-तन में थे। अकाल पड़ने पर वह उज्जैन चले गये।

उन्हें वहाँ एक महापुरुष मिल गये। कपटसहित वे उनकी सेवा करने लगे। कुछ ही दिनों में गुरु महाराज ने जो बताया, रट लिया। अभिमानवश गुरु का अपमान कर बैठे। जिन शंकरजी की वह पूजा करते थे, वही क्रुद्ध हो गये। वह अपने को बहुत विद्वान समझने लगे थे लेकिन शंकरजी ने **'रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।'–** उन्हें अज्ञ अर्थात् अज्ञानी कहा, शाप दे डाला। गुरु ने ही बीच-बचाव किया– भगवन्! आपकी दृष्टि इस पर पड़ ही गयी है तो दया करें। इसने तो कोई भूल की ही नहीं। आपकी माया से विवश होकर यह भूल कर बैठा। जिससे इसका परम कल्याण हो, वही करने की कृपा करें। शंकरजी ने अनुग्रह करते हुए कहा कि इसे हजार जन्म तो लेना ही पड़ेगा किन्तु जन्म-मृत्यु का कष्ट इसे नहीं होगा। राम की भक्ति इसे किसी भी जन्म में विस्मृत नहीं होगी।

हजार जन्म बीत गये। कागभुसुण्डिजी को विप्र का शरीर मिला। पिताजी ने बहुत प्रयास किया किन्तु वह पढ़े ही नहीं; क्योंकि जिसे कामधेनु उपलब्ध हो, वह गदही की सेवा क्यों करेगा? उन्हें कामधेनुरूपी ब्रह्मविद्या उपलब्ध थी इसलिए भौतिक विद्या की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। महापुरुषों की विद्या कुछ और है जिसे स्वयं भगवान पढ़ाते हैं। अनपढ़ कागभुसुण्डिजी अपने युग के सर्वोपरि महापुरुष हुए।

श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध में इसी तरह का कथानक जड़भरत का है। पूर्वजन्म में मृग-शावक में आसक्ति से उन्हें मृग का शरीर मिला। उन्हें ज्ञान था कि मैं पहले महात्मा था। इन्द्रायणी नदी में कमर भर पानी में खड़े होकर बिना कुछ खाये-पीये उन्होंने शरीर का त्याग कर दिया। एक ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ। भौतिक शिक्षा में उनकी रुचि न थी। पिताजी के देहावसान के पश्चात् भाइयों ने उन्हें खेत की रखवाली सौंप दी किन्तु उसमें भी उनकी रुचि न देख उन्होंने भरत को घर से निष्कासित कर दिया। भरत को इसी दिन की प्रतीक्षा थी क्योंकि वह सोचते थे कि यदि अपने से जाऊँगा

तो घर के लोग जाने नहीं देंगे। गंगा के किनारे भगवान का भजन करते हुए भरत विचरण कर रहे थे। रहूगण नामक एक नरेश पालकी में बैठकर गुरु की खोज में उधर से निकले। भरत के समीप पहुँचते ही पालकी का एक कहार बीमार पड़ गया। जंगल में दूसरा कहार कहाँ मिले अतः राजा के सेवकों ने विचरणरत भरत को उस कहार के स्थान पर लगा दिया। भरत चींटियों को बचाते हुए, पाँव इधर-उधर रखते हुए चल रहे थे। इससे पालकी को झटका लग रहा था। राजा ने कहा– तुमलोग कैसे चल रहे हो? कहारों ने कहा– महाराज! हमलोग तो कह रहे हैं कि बोली बोलकर चलो, सीना तानकर चलो, कदम मिलाकर चलो किन्तु यह नया कहार कदम मिलाकर नहीं चल रहा है।

राजा ने पालकी से उतरकर भरत से कहा कि तुम दुबले-पतले तो नहीं हो, क्या तुमसे भार ढोते, रास्ता चलते नहीं बनता? जीवन में पहली बार भरत बोले– राजन्! भार ढोना वह जानता है जिसके कंधे पर भार होता है। क्या तुमने कभी भार ढोया है? कभी चले हो रास्ते पर? आत्मा भी क्या दुबली-पतली होती है? राजा ने सोचा– जिस गुरु की खोज में हम निकले हैं, कहीं वह मिल तो नहीं गये? उन्होंने सादर प्रणाम किया, उनसे अपनी मुक्ति का उपाय पूछा। भरत ने कहा– तत्त्वदर्शी महापुरुष की चरण-धूलि में लोटे बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। उस राजा ने बहुत से देवी-देवताओं के मन्दिर–कहीं कुल देवता, कहीं सीमा देवता, कहीं युद्ध के देवता के मन्दिर बना रखे थे। उसने पूछा कि भगवन्! ये देवी-देवता.....? भरत ने बताया कि ये देवी-देवता बटेर के समान कायर, कौए के समान भला-बुरा सब कुछ खा लेनेवाले, बगुले के समान ऊपर से स्वच्छ, शान्त किन्तु भीतर से घात करनेवाले और उलूक के समान अचेत आत्माओं की हत्या करनेवाले हैं, और कुछ भी नहीं। अतः भजन एक परमात्मा का ही करना चाहिए। इस प्रकार जड़भरत पढ़े-लिखे न होते हुए भी अपने युग के सर्वोपरि विद्वान हुए। ईश्वरपथ में वाह्य विद्या काम नहीं देती, भगवान स्वयं पढ़ाते हैं।

हमारे गुरु महाराज भी तीन दिन ही विद्यालय गये थे। तीसरे दिन उनकी चंचलता से खीझकर गुरुजी ने एक चटकना लगा दिया। बच्चा मचलकर लगा रोने! माँ ने कहा– अब मेरा लड़का विद्यालय नहीं जायेगा। पार्थिव शिक्षा का पाठ जीवन से उठ गया। जब महाराजजी अनुसुइया में विराजमान हो गये तो उनकी वाणी के समक्ष विद्वानों की विद्वता का कोई उपयोग नहीं रह जाता था। **'हम कही आँखिन की देखी, तू कहो कागज की लेखी। हमार तोहार मनवा कैसे एकै होइ।'** तत्त्वदर्शी महापुरुष के शरण-सान्निध्य से गुरु महाराज ने स्वरूप में स्थिति प्राप्त कर लिया इसलिए **'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः'**। गुरु महाराज की बारहमासी में है–

ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति गुरु के लक्षण जान।
इच्छा राखे मोक्ष की ताहि शिष्य पहचान॥

जो ब्रह्मविद् हों, ब्रह्म के विषय में व्यक्त कर सकते हों, मन की दृष्टि का नाम सुरत है उसे पकड़कर चिन्तन में लगा सकते हों – यह सद्गुरु के लक्षण हैं और जो केवल मोक्ष की इच्छा रखता हो, यही शिष्य की पहचान है। गुरु का महत्व इंगित करते हुए इसमें है–

ईश्वर से अधिक भक्ति गुरु की कीजै।
इस मानव तन को पाय सुफल करि लीजै॥

गोस्वामी तुलसीदास जी का भी यही निर्णय है–

तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥

(मानस, 2/128/8)

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में स्थान-स्थान पर सद्गुरु के ध्यान के विधान का वर्णन किया है। महर्षि लोमश के पास कागभुसुण्डिजी पहुँचे। उनके उत्तर-प्रत्युत्तर से महर्षि को क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दे दिया कि कौए की तरह काँव-काँव लगा रखा है, तुम्हें अपने पक्ष का बड़ा हठ है, जाओ अतः चाण्डाल पक्षी कौआ हो जाओ।

तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिर नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि, हरषित चलेउ उड़ाइ॥

(मानस, 7/112 क)

मैं कौआ हो गया, मुनि के चरणों में सिर झुकाकर बड़े हर्ष के साथ उड़ चला कि भगवन्! आपने अच्छी कृपा की। अब आकाश-मार्ग से जहाँ जाना-आना होगा, जाता रहूँगा। जमीन पर चलने में कभी कुत्ते भौंकते हैं, कहीं सर्प-बिच्छू, काँटा-कुश, कभी कोई कहता–'इस प्रश्न का उत्तर दीजिए' तो कभी कोई कुछ निवेदन करता है।

रिषि मम महत सीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेखी॥
अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई॥

मुनि पश्चाताप करने लगे। उन्होंने आदर के साथ मुझे बुला लिया। '**मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा। हरषित राम मन्त्र तब दीन्हा॥**' पहले तो उन्होंने सान्त्वना दिया, हर्ष के साथ राम मन्त्र दिया। इस प्रकार साधना का पहला चरण है मन्त्र-जाप। '**बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना॥**' साधना का दूसरा चरण है ध्यान। बालकरूप राम का ध्यान। राम तो राजा भी थे, तपस्वी भी थे, शूरवीर भी थे किन्तु उनका ध्यान न कर यह बालकरूप क्या है? गुरु महाराज कहा करते थे कि पाँच साल का बच्चा और स्वरूप में स्थित परमहंस एक ही होते हैं। महापुरुष का शरीर देखने में बड़ा है किन्तु दोनों की मनःस्थिति एक समान ही होती है। पाँच वर्ष के बच्चे में जिस प्रकार काम-क्रोध, लोभ-मोह या राग-द्वेष की आप कल्पना भी नहीं कर सकते, उसी प्रकार एक महापुरुष में भी कोई विकार कदापि नहीं होते। वे बालकरूप होते हैं। ऐसे ही महापुरुष के चरणों के ध्यान का विधान है। सनकादि ऋषि इसी स्तर के पूर्ण महापुरुष थे– '**देखत बालक बहु कालीना।**' सृष्टि के वे प्रथम महापुरुष बालक जैसे थे। यह एक स्थिति है। इसी स्थितिवाले महापुरुष सद्गुरु होते हैं। इन्हीं महापुरुषों के ध्यान का विधान है।

माता पार्वती पिछले जन्म में सती रूप में थीं। वह राम की परीक्षा लेने गयीं। असफल हो गयीं। पिता के यज्ञकुण्ड में प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। हिमाचल नरेश के यहाँ उनका दूसरा जन्म हुआ। कठोर तपस्या करके उन्होंने भगवान शिव को प्राप्त कर लिया। वटवृक्ष के नीचे भगवान शिव के समीप उनका आसन लगा तो पिछले जन्म में जहाँ से प्रश्न छूटा था, उन्होंने वहीं से पुनः आरम्भ किया कि भगवन्! **'रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई॥'**– यदि वह राजा के लड़के थे तो ब्रह्म किस प्रकार हुए? हमने देखा था कि पत्नी के वियोग में वे उड़ते हुए पक्षियों से पूछ रहे थे, दौड़ते हुए मृगों से पूछ रहे थे, भौरों से पूछ रहे थे। पहले भी कभी इन्होंने उनसे बातें की थीं जो बता देते? उनकी महिमा भी देखने को मिली थी कि अनन्त देवी-देवता, ब्रह्मा-विष्णु-महेश और उनकी पत्नियाँ उनके चरणों की वन्दना कर रहे हैं।

भगवान शंकर बिगड़ खड़े हुए कि पार्वती! तुमने ऐसा अनुचित प्रश्न कैसे कर दिया? ऐसा प्रश्न तो पाखण्डी ही कर सकते हैं। जिन्होंने मोहरूपी मदिरा पी रखी हो, वही कर सकते हैं। शंकरजी की डाँट-फटकार का कोई प्रभाव पार्वतीजी पर नहीं पड़ा। तब उन्होंने ध्यानस्थ होकर देखा और कहा– भगवान की कृपा से तुम्हारे हृदय में शोक, मोह या संदेह कुछ भी नहीं है। यह प्रश्न तुम्हारा है ही नहीं। तुमने लोकहित के लिए प्रश्न किया है अतः सुनो कि राम हैं कौन! **'जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥'** जिसको जान लेने के साथ जगत् उसी प्रकार खो जाता है जैसे जग जाने पर स्वप्न का भ्रम समाप्त हो जाता है। **'बन्दउँ बाल रूप सोइ रामू। सब सिद्धि सुलभ जपत जिसु नामू॥'** मैं उन बालरूप राम की वन्दना करता हूँ। बालरूप राम हमें कैसे मिलें? शंकरजी कहते हैं कि वह तुम्हें सुलभ हो जायेंगे। **'सब सिद्धि सुलभ जपत जिसु नामू।'–** उनके नाम का जप करें, बालरूप राम तुम्हें सुलभ हो जायेंगे। अतः गुरु को ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। जो बालस्वरूप हैं, उन्हें ढूँढ़िए मत, प्रभु के प्रति समर्पित होकर नाम

का जप करें। जहाँ श्रद्धा से सम्बन्ध जुड़ा तो भगवान स्वयं आपको बता देंगे कि कहाँ बैठे हैं बालस्वरूप राम! ध्यान बालरूप राम का अर्थात् महापुरुष का ही किया जाता है।

भगवान भोलेनाथ ने राम का स्वरूप बताया कि '**आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।**' वह भगवान जन्मा कब, कब तक जीवित रहेगा, उसका आदि और अन्त कोई नहीं जान सका। अपने विवेक के अनुसार वेदों ने इस प्रकार गायन किया कि-

बिनु पग चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।

वह बिना पाँव के चल रहा है, बिना कानों के सुन रहा है, बिना आँखों के देख रहा है, बिना शरीर के स्पर्श कर रहा है। क्या कोई चित्रकार ऐसे भगवान का रूप बना सकता है?

असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

इस लोक में जो कुछ दृश्य दिखाई देता है, भगवान वह नहीं हैं। इससे परे उसकी करनी अलौकिक है। उसकी महिमा का वर्णन किया ही नहीं जा सकता। वह वाणी का विषय नहीं है।

जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सो दसरथ सुत भगत हित, कोसल पति भगवान।।

इस प्रकार वेद और बुध अर्थात् प्रत्यक्षदर्शी महापुरुष जिसका गायन करते हैं, मुनिलोग जिसका ध्यान करते हैं, वह भगवान दशरथसुत हैं, कोसलपति हैं। जो बिना पैरों के चलते हैं, अलौकिक हैं, मुनिलोग उनका ध्यान धरते हैं। यह है मानस! मानस कहते हैं अन्तःकरण को! अर्थात् राम के वे चरित्र जो मानस में अर्थात् आपके अन्तःकरण में प्रसारित हैं।

शास्त्र दो दृष्टियों से लिखा जाता है। एक तो इतिहास को कायम रखना जिससे लोग पूर्वजों के पदचिन्हों पर चल सकें, मर्यादित, गौरवपूर्ण जीवन

जी सकें। किन्तु केवल कुशलतापूर्वक जी-खा लेने से कर्त्तव्यों की पूर्ति नहीं हो जाती, मात्र इतने से कल्याण सम्भव नहीं है। इसलिए शास्त्र लिखने का दूसरा दृष्टिकोण है अध्यात्म। हर जीव माया के आश्रित है। इसे आत्मा की अधिकृत भूमि में खड़ा कर देना, आत्मा के संरक्षण में चलते हुए परम तत्त्व परमात्मा तक की दूरी तय करा देना, परमात्मा का दर्शन-स्पर्श, उनमें विलय और स्थिति दिला देना अध्यात्म कहलाता है। जैसा अभी बताया गया कि दसों इन्द्रियों की निरोधमयी वृत्ति ही दशरथ है। मन और इन्द्रियों का निरोध तो सुमिरन और चिन्तन से ही होता है। जहाँ संयम सधा तो भक्तिरूपी कौशल्या के अंक में भगवान आ जाते हैं। भगवान कोसलपति हैं। आत्मिक सम्पत्ति ही स्थिर सम्पत्ति है। इस कोश के स्वामी हैं भगवान। '**जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभवगम्य भजहिं जेहि सन्ता।।**'– जो अनुभवगम्य है, मुनिजन उनका ध्यान धरते हैं। विज्ञानरूपी राम! वह बिना ज्ञान का ज्ञान है, अपौरुषेय वाणी है, भगवान के मुख की वाणी है। भगवान जब उपदेश करते हैं तो पेड़ से, पक्षियों से, पत्तों से, कहीं से भी, सर्वत्र से बोल सकते हैं क्योंकि वे सर्वत्र हैं। उनका निर्देश समझते जायँ और साधना में प्रवृत्त होते जायँ– '**राम सूत्रधर अन्तरयामी।**' वह सूत्रधर हैं, अन्तर्यामी हैं– यही सद्गुरु का स्वरूप है। ध्यान परमात्मस्वरूप सद्गुरु का ही किया जाता है।

● (7) आदिशास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता में स्थान-स्थान पर निर्देश है कि भगवान श्रीकृष्ण परमात्मस्वरूप योगेश्वर थे, सद्गुरु थे। महाभारत युद्ध के मुहाने पर शस्त्र-संचालन के समय भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से अर्जुन को दृष्टि मिली। उसने भगवान का स्वरूप देखा और जो कुछ अर्जुन ने देखा, वह सब भगवान व्यास की दी हुई दृष्टि से संजय ने भी देखा। उस प्रत्यक्षदर्शी संजय ने निर्णय दिया कि राजन्! विजय पाण्डवों की होगी–

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ *(गीता, 18/78)*

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं वहीं श्री है, विजय है, विभूति है और अचल

नीति है। जो भगवत्स्वरूप को प्राप्त हैं, जिनमें दूसरों को भी वह स्वरूप प्रदान करने की क्षमता है, वही सद्गुरु है। उनका अनुगमन करनेवाला अनुरागी पथिक जहाँ भी है, वहीं विजय है, विभूति और अचल नीति है।

● (8) **यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।**
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ *(गीता, 10/3)*

भगवान कहते हैं कि जो मुझ अजन्मा, अनादि और सम्पूर्ण लोकों के महान ईश्वर को विदित कर लेता है, वह मरणधर्मा मनुष्यों में ज्ञानवान है और ऐसा जाननेवाला सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। उन महेश्वर को प्रत्यक्ष दर्शन सहित जानना और पापों से मुक्त होना एक साथ ही घटित होता है। भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन के साथ ही पापों से मुक्ति होती है। भगवान श्रीकृष्ण सम्पूर्ण लोकों के महान ईश्वर हैं। जो उन्हें जान लेता है, वह पापों से मुक्त होकर उसी स्थिति को प्राप्त हो जाता है। यही सद्गुरु की देन है।

● (9) **अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।**
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ *(गीता, 9/11)*

मूढ़ लोग मुझे नहीं जानते जबकि मैं परम तत्त्व परमात्मा का स्पर्श करके उसी परमात्म भाव में स्थित हूँ, परमात्मा ही हूँ किन्तु हूँ मनुष्य तन के आधारवाला। इस तन में रहते हुए ही यह स्थिति मुझे मिली है। इसीलिए मूढ़ लोग मुझे नहीं जानते। जब वे दृष्टि दौड़ाते हैं तो उन्हें मेरा शरीर ही दिखाई पड़ता है। वे सोचते हैं कि यह भी हमारी तरह शरीरधारी ही तो है इसलिए राक्षसी और आसुरी स्वभाववाले वे लोग मुझे नहीं जान पाते, मनुष्य कहकर पुकारते हैं; किन्तु दैवी सम्पद् से युक्त महात्माजन अनन्य श्रद्धा से युक्त होकर मुझे भजते हैं। वे पत्र-पुष्प, फल-जल जो अर्पण करते हैं, मैं वह सब सेवन करता हूँ और उनका परम कल्याण करनेवाला होता हूँ।

महात्मा और क्या होते हैं? अभ्यास करते-करते साधना के पूर्तिकाल में परमात्मा का दर्शन व स्पर्श करके वे परम भाव में स्थित हो जाते हैं, आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। शरीर के रहते हुए ही उन्हें यह स्थिति

मिलती है। लोगों की दृष्टि में केवल उनका शरीर दिखता है, किन्तु वे महापुरुष शरीर नहीं होते। शरीर से तो उन्हें उस दिन ही मुक्ति मिल जाती है जिस दिन वह परमात्मा का दर्शन और उनमें स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। भगवान श्रीकृष्ण परम भाव में स्थित परमात्मा हैं और यही सद्गुरु की भी अवस्था होती है।

● (10) अर्जुन का प्रश्न था कि भगवन्! आपका जन्म तो अब हुआ है जबकि सूर्य का जन्म बहुत पुराना है, मैं कैसे विश्वास करूँ कि इस अविनाशी योग को आरम्भ में आपने ही कहा था। भगवान ने कहा– अर्जुन! मेरे तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं, उन सबको तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। अर्जुन ने प्रश्न किया– भगवन्! आपका जन्म कैसे होता है? भगवान ने कहा–

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥ *(गीता, 4/6)*

मैं विनाशरहित, पुनः जन्मरहित और समस्त प्राणियों के स्वर में संचारित सम्पूर्ण लोकों का महान ईश्वर होते हुए भी अपनी त्रिगुणमयी प्रकृति को आत्मिक प्रक्रिया के द्वारा अपने अधीन करके प्रकट होता हूँ। आत्ममाया, योगमाया, विद्यामाया और राममाया पर्यायवाची शब्द हैं। आत्ममाया वह है जो आत्मा की ओर बढ़ाये, आत्मस्थिति दिलाये। योगमाया वह है जो भगवान से मिलन करा दे। विद्यामाया या राममाया वह है जो परमात्मा रामपर्यन्त दूरी तय करा दे। आप किन परिस्थितियों में प्रकट होते हैं? भगवान ने बताया–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ *(गीता, 4/7)*

जब-जब अधर्म की वृद्धि देखकर हृदय ग्लानि से भर जाता है, तब-तब मैं अपने स्वरूप को रचता हूँ। जब साधक चाहता है कि मैं साधन करूँ किन्तु माया के थपेड़ों से पार नहीं पाता तब भगवान सहायता में खड़े हो जाते हैं। इसी तरह की ग्लानि महाराजा मनु को हुई थी– **'हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु।'** उन्हें लगा कि घर में रहते चौथापन आ गया, विषयों से वैराग्य होता ही नहीं। जहाँ हृदय ग्लानि से भरा तो भगवान

अपने स्वरूप की संरचना करने लग जाते हैं अर्थात् भगवान का आविर्भाव केवल अनुरागी के हृदय में होता है। वहाँ प्रकट होकर आप करते क्या हैं?–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ *(गीता, 4/8)*

'**परित्राणाय साधूनां**'– साध्य वस्तु परमात्मा में प्रवेश दिलानेवाले विवेक, वैराग्य, शम, दम, नियम, धारणा, ध्यान इत्यादि को निर्विघ्न प्रवाहित करने के लिए और '**दुष्कृताम्**'– जिनसे दूषित कार्यरूप लेते हैं, उन काम-क्रोध, राग-द्वेष इत्यादि विजातीय प्रवृत्तियों को समूल नष्ट करने के लिए तथा धर्म को भली प्रकार स्थापित करने के लिए मैं प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ। युग का तात्पर्य कभी सतयुग, त्रेता या द्वापर नहीं बल्कि '**नित जुग धरम होहिं सब केरे।**'– युगधर्म सदैव विद्यमान रहते हैं। उनका उतार-चढ़ाव मनुष्य के स्वभाव पर है। यह साधना की क्रमोन्नत अवस्थाएँ हैं। भगवान साधना के हर स्तर पर प्रकट होते हैं। जैसा स्तर, वैसा ही वे साधक को चलाते हुए आगे बढ़ाते हैं। आप प्रकट होते हैं तब तो सभी देखते होंगे? श्रीकृष्ण कहते हैं– नहीं,

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ *(गीता, 4/9)*

मेरा यह जन्म अर्थात् त्रिगुणमयी प्रकृति को आत्मिक प्रक्रिया के द्वारा अपने वश में करके प्रकट होना, सद्गुणों का संरक्षण और विकारों को समूल नष्ट करते हुए शाश्वत-धर्म एकमात्र परमात्मा में स्थिति दिलाना – यह कर्म दिव्य है, अलौकिक है, यह वाह्यरूप में नहीं होता। '**एवं यो वेत्ति तत्त्वतः**'– इस प्रकार के जन्म और कर्म को जो जानता है, वह तत्त्वदर्शी है। आत्मा ही परम तत्त्व है। परम से संयुक्त होकर वह परमात्मा हो जाता है। आत्मा का साक्षात्कार करनेवाला ही इस आविर्भाव को समझ पाता है। इस स्वरूप को जानना ही तत्त्वदर्शन है और जो जानता है तत्त्वदर्शी है। सबके हृदय में इस अवतार की व्यवस्था है। यह जागृति, भगवान कहते हैं, मेरे द्वारा होती है अर्थात् श्रीकृष्ण महान योगेश्वर थे (गीता, 11/9)। यह भजन की जागृति का चित्रण है।

● (11) **अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।**
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥ *(गीता, 10/8)*

भगवान कहते हैं– मैं सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ, मुझसे ही सम्पूर्ण जगत् चेष्टा करता है, ऐसा मानकर विवेकीजन श्रद्धापूर्वक मेरा निरन्तर भजन करते हैं। अर्थात् मेरे अनुरूप जो प्रवृत्ति होती है उसे मैं ही किया करता हूँ, वह मेरी ही देन है। वे किस प्रकार भजन करते हैं? –

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ *(गीता, 10/9)*

वे मुझमें ही चित्त को लगानेवाले, मुझमें ही प्राणों को लगानेवाले परस्पर मेरी ही चर्चा करते हैं। मेरा गुणगान करते हुए वे सन्तुष्ट रहते और मुझमें ही रमण करते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ *(गीता, 10/10)*

निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुए प्रेमपूर्वक भजनेवाले उन भक्तों को मैं बुद्धियोग अर्थात् योग में प्रवेशवाली बुद्धि देता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं। अतः योग की जागृति ईश्वर की देन है, सद्गुरु की अनुकम्पा है। वह महापुरुष बुद्धि कैसे देते हैं?–

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ *(गीता, 10/11)*

उनके ऊपर पूर्ण अनुग्रह करने के लिये मैं उनकी आत्मा से अभिन्न खड़ा होकर, रथी होकर अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को ज्ञानरूपी दीपक के द्वारा प्रकाशित कर नष्ट करता हूँ जिससे वह मुझे प्राप्त होते हैं। वस्तुतः किसी स्थितप्रज्ञ योगी द्वारा जब तक वह परमात्मा आपके आत्मा से ही जाग्रत होकर पल-पल पर संचालन नहीं करता, रोकथाम नहीं करता, इस प्रकृति के द्वन्द्व से निकालते हुए स्वयं आगे नहीं ले चलता, तब तक वास्तव में

यथार्थ भजन आरम्भ ही नहीं होता। वैसे तो भगवान सर्वत्र से बोलने लगते हैं, लेकिन प्रारम्भ में वे स्वरूपस्थ महापुरुष द्वारा ही बोलते हैं। यदि ऐसा महापुरुष आपको प्राप्त नहीं है तो वे स्पष्ट नहीं बोलेंगे। इष्ट, सद्गुरु अथवा परमात्मा का रथी होना एक ही बात है।

● (12) **द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।**
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ *(गीता, 15/16)*

अर्जुन! इस संसार में '**क्षर**'– क्षय होनेवाले, परिवर्तनशील और '**अक्षर**'– अक्षय, अपरिवर्तनशील – ऐसे दो प्रकार के पुरुष हैं। उनमें सम्पूर्ण भूतों (प्राणियों) के शरीर तो नाशवान् हैं, क्षर पुरुष हैं, आज हैं तो कल नहीं रह जायेंगे और दूसरा कूटस्थ पुरुष अविनाशी कहा जाता है। साधन के द्वारा मनसहित इन्द्रियों का निरोध अर्थात् जिसकी इन्द्रिय-समूह कूटस्थ है, वही अक्षर कहलाता है। अब आप स्त्री कहलाते हों अथवा पुरुष, यदि शरीर और शरीर-जन्म के कारण संस्कारों का क्रम लगा है तो आप क्षर पुरुष हैं और जब मनसहित इन्द्रियाँ कूटस्थ हो जाती हैं तब वही अक्षर पुरुष कहलाता है। संसार में पुरुष के यही दो रूप हैं। किन्तु यह भी पुरुष की अवस्था-विशेष ही है। इन दोनों से परे एक अन्य पुरुष भी है–

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ *(गीता, 15/17)*

उन दोनों से अति उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका भरण-पोषण करता है और अविनाशी, परमात्मा, ईश्वर ऐसे कहा गया है। परमात्मा, अव्यक्त, अविनाशी, पुरुषोत्तम इत्यादि उसके परिचायक शब्द हैं। वह ऐसा कहलाता भर है वस्तुतः अन्य ही है अर्थात् अनिर्वचनीय है। यह क्षर-अक्षर से परे महापुरुष की अन्तिम अवस्था है, जिसको परमात्मा इत्यादि शब्दों से इंगित किया गया है; किन्तु वह अन्य है अर्थात् अनिर्वचनीय है। उसी स्थिति में योगेश्वर श्रीकृष्ण अपना भी परिचय देते हैं। यथा–

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥ *(गीता, 15/18)*

मैं उपर्युक्त नाशवान् परिवर्तनशील क्षर पुरुष से सर्वथा अतीत हूँ और अक्षर-अविनाशी-कूटस्थ पुरुष से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक और वेद में पुरुषोत्तम कहलाता हूँ। उस पुरुषोत्तम परमात्मस्वरूप से समानता करते हुए भगवान ने अपना परिचय दिया कि मैं भी पुरुषोत्तम हूँ और जो मुझे इस भाव से देखते हैं, उन्होंने ही मुझे यथार्थ स्वरूप से देखा और जाना है। यही भगवान श्रीकृष्ण का स्वरूप है। वह भगवान भी हैं और योगेश्वर भी।

● (13) **उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।**
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥ *(गीता, 13/22)*

भगवान हृदय देश में बहुत समीप, हाथ-पाँव इत्यादि जितना आपके समीप हैं, उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। जब आप श्रद्धा से भजन में लगेंगे तो भगवान जानते हैं कि यह मुझे पुकार रहा है, वे **'अनुमन्ता'**–अनुमति देने लगेंगे। उन आदेशों के अनुसार जब साधक चलने लगता है तब भगवान **'भर्ता'**–भरण-पोषण करने लगते हैं, योगक्षेम करने लगते हैं। साधना उन्नत हुई तो वह भोक्ता बन जाते हैं। **'भोक्तारं यज्ञ तपसां'**–यज्ञ, तप, संयम जो कुछ साधक करता है, भगवान सब ग्रहण कर लेते हैं, यही उनका भोजन है और इन सबके परिणाम में वह **'महेश्वरः'**–महान ईश्वर के रूप में परिणत हो जाते हैं। लेकिन अभी माया अर्थात् प्रकृति जीवित है तभी तो वह उसका संचालक ईश्वर है। इससे उन्नत स्तर होने पर **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**–परम का स्पर्श करके परम भाव में स्थित हो गये तो परमात्मा हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर में रहते हुए वह पुरुष **'परः'** ही है, प्रकृति से परे है, इस स्थिति का नाम है परमात्मा। भगवान श्रीकृष्ण इसी स्तरवाले हैं। यह स्थिति सबके लिए सुलभ है, क्योंकि भगवान उपद्रष्टा के रूप में सबके हृदय में हैं ही। यहीं से साधना का आरम्भ है। साधक का दायित्व है गीतोक्त विधि के अनुसार साधना को समझना और उसमें प्रवृत्त होना।

● (14) गीता (18/50) में है– कौन्तेय! जो ज्ञान की परानिष्ठा है, पराकाष्ठा है, उस परम सिद्धि को प्राप्त पुरुष जिस विधि से ब्रह्म को प्राप्त होता है, उस विधि को तू मुझसे संक्षेप में जान। गीता (18/51-55) में है कि अर्जुन! विशेष रूप से शुद्ध बुद्धि से युक्त, एकान्त तथा शुभ देश का सेवन करनेवाला, साधना में जितना सहायक हो उतना ही आहार लेनेवाला, जीते हुए मन, वाणी और शरीरवाला, दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष निरन्तर ध्यानयोग के परायण और इन सबको धारण करनेवाले अन्तःकरण को वश में करके शब्दादिक विषयों को त्यागकर, राग-द्वेष को नष्ट करके तथा अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध, वाह्य वस्तुओं तथा आन्तरिक चिन्तनों का त्याग कर, ममतारहित और शान्त अन्तःकरण हुआ पुरुष परब्रह्म के साथ एकीभाव होने के लिए योग्य होता है। ब्रह्म के साथ एकीभाव होने की योग्यतावाला वह प्रसन्नचित्त पुरुष न तो किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है। सब भूतों में समभाव हुआ वह भक्ति की पराकाष्ठा पर है अर्थात् भक्ति अपना परिणाम देने की स्थिति में है। उस पराभक्ति के द्वारा वह मुझे तत्त्व से भली प्रकार जानता है।

वह तत्त्व है क्या? मैं जो और जिस प्रभाववाला हूँ, अजर-अमर-शाश्वत जिन अलौकिक गुणधर्मोंवाला हूँ, उसे जानता है और मुझे तत्त्व से जानकर तत्काल ही मुझमें प्रवेश कर जाता है। प्राप्तिकाल में तो भगवान दिखाई पड़ते हैं और प्राप्ति के ठीक बाद, तत्क्षण वह अपने ही आत्मस्वरूप को उन ईश्वरीय गुणधर्मों से युक्त पाता है कि आत्मा ही अजर, अमर, शाश्वत, अव्यक्त और सनातन है अर्थात् ब्रह्म, तत्त्व, ईश्वर, आत्मा और परमात्मा सभी पर्याय हैं। यही परम सिद्धि, परम गति तथा परम धाम भी है। भजन के परिणाम में परमात्मा का जो साक्षात् कर लेता है, वह तत्त्वदर्शी है। गीता (4/34) में अर्जुन ने प्रश्न किया कि इस ज्ञान को मैं कैसे प्राप्त करूँ? भगवान ने कहा कि किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष के पास निष्कपट भाव से सेवा और प्रश्न कर तुम उस ज्ञान को प्राप्त करो। वे तत्त्व के ज्ञाता तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे। इस

प्रकार तत्त्वदर्शी भगवत्ता को प्राप्त महापुरुष ही सद्गुरु हैं। गुरु एक अत्यन्त उच्च महानतम स्थिति है।

● (15) गीता (4/13) में भगवान ने कहा कि **'चातुर्वर्ण्यम् मया सृष्टम्'**– चार वर्णों की संरचना मैंने की। तो क्या आपने मनुष्य को चार भागों में बाँट दिया? भगवान कहते हैं– नहीं, **'गुणकर्मविभागशः'**–गुणों के माध्यम से कर्म को चार भागों में बाँटा। उस विभाजनकर्ता मुझ अव्यक्त आत्मा को तू अकर्ता ही जान। आप करते हैं तो अकर्ता क्यों? गीता (4/14) में भगवान कहते हैं कि कर्म मुझे लिपायमान नहीं करते; क्योंकि कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है। इस नियत कर्म का फल है आत्मदर्शन, वह मुझसे विलग नहीं है। इस यज्ञार्थ कर्म को बिना किये सृष्टि में न कोई पहले प्राप्त कर सका है, न कोई भविष्य में प्राप्त कर सकेगा। जनकादि ऋषि भी इसी कर्म को करके परम नैष्कर्म्य स्थिति को प्राप्त हुए थे। कर्मों के परिणाम में जिसकी आत्मा विदित है, जो आत्मतृप्त है, आत्मस्थित है, उस महापुरुष के लिए किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्य नहीं है। अब कर्म करने से उन्हें न तो लाभ है, न छोड़ने से हानि। फिर भी वे महापुरुष लोकहित के लिए भली प्रकार कर्म में बरतते हैं; क्योंकि महापुरुष जो आचरण कर जाते हैं, पीछेवाली पीढ़ियाँ उसी का अनुसरण किया करती हैं।

उन महापुरुषों से अपनी समानता करते हुए भगवान ने अपना परिचय दिया कि अर्जुन! मुझे भी तीनों कालों में किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है। कर्मों का फल परमात्मा मुझसे विलग नहीं है इसलिए कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है इसलिए मुझे कर्म नहीं बाँधते।

मेरी ही ऐसी स्थिति है, ऐसी बात नहीं है, इस स्तर से जो भी मुझे जान लेता है, उसे भी कर्म नहीं बाँधते। जैसा श्रीकृष्ण, वैसा ही उस स्थिति से जाननेवाला पथिक। **'एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः'** ***(गीता, 4/15)*** यही समझकर पूर्व में होनेवाले मुमुक्षु पुरुषों ने इस कर्मपथ पर कदम रखा कि भगवान श्रीकृष्ण को कर्म नहीं बाँधते; उस स्तर से जो जान लेता

है, उसको कर्म नहीं बाँधते। उस स्तर से मैं जान लूँगा तो मुझे भी कर्म नहीं बाँधेंगे। जैसा श्रीकृष्ण, वैसा ही अर्जुन और वैसा ही वह पुरुष। आप कर्मपथ पर कदम रख लेंगे तो वैसे ही आप। अस्तु, श्रीकृष्ण जो भी रहे हों, पर ब्रह्म, परमात्मा, ज्योतिर्मय, अव्यक्त पुरुष इत्यादि– वह स्थिति आप सबके लिए सुलभ है। कर्म वह सत्ता है जो आत्मदर्शन, स्पर्श और विलय दिलाता है।

● (16) महाभारत वनपर्व के 12वें अध्याय में है कि वनवास के आरम्भिक दिनों में पाण्डवों को सान्त्वना देने भगवान श्रीकृष्ण आये। पाण्डवों के प्रति हुए अन्याय से श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्हें इस प्रकार क्रोध करता देख अर्जुन ने उन्हें शान्त किया और उनके द्वारा पूर्वशरीरों में किये हुए कर्मों से उनकी स्तुति करते हुए कहा कि केशव! अब तो हम सबको आपका ही आश्रय है। महर्षि व्यास से हमने सुना था कि एक कल्प में आप नारायण ऋषि के रूप में यत्र सायंगृह मुनि के रूप में दस हजार वर्षों तक गन्धमादन पर्वत पर जल एवं फल खाकर रहे। एक कल्प में आप ग्यारह हजार वर्षों तक पुष्कर तट पर केवल जल पीकर तपस्यारत रहे। एक कल्प में सौ वर्षों तक अपनी दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर विशालपुरी के बद्रिकाश्रम में वायु-भक्षण कर आप तपस्या करते रहे। एक कल्प में सरस्वती तट पर उत्तरीय वस्त्रों का त्याग कर आप बारह वर्षों तक यज्ञ करते रहे, उन दिनों आप अत्यन्त कृश हो गये थे। एक जन्म में प्रभास क्षेत्र में शौच, सन्तोष इत्यादि नियमों में स्थित होकर एक पैर पर खड़े होकर तपस्या करते रहे। एक कल्प में विष्णुरूप में आप इन्द्रपुरी में थे। एक जन्म में आप वामन भगवान के रूप में थे जहाँ अपने तेज से तीन डगों में त्रिलोक को नाप लिया। एक जन्म में चित्ररथ वन में अनेक यज्ञों का आपने अनुष्ठान किया और प्रत्येक यज्ञ में करोड़-करोड़ सुवर्ण मुद्राओं का दान दिया। आप ब्राह्मणों के साथ कुछ काल तक कैलाश पर्वत पर भी रहे। आपने सहस्त्रों अवतार धारण किये हैं, सैकड़ों असुरों का वध किया है। इस कल्प में परम का स्पर्श करके मनुष्य रूप में आप साक्षात् नारायण हैं। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण अनेक जन्मों से चले हुए पथिक थे

जिन्होंने साधन करके परमात्मस्वरूप में स्थिति प्राप्त की।

● (17) भगवान श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण पहचान गीता है जिसमें उन्होंने बताया कि एक आत्मा ही सत्य है, शाश्वत है, सनातन है किन्तु अचिन्त्य भी है अर्थात् जब तक चित्त और चित्त की लहर है, तब तक आत्मा की इन विभूतियों को नहीं देखा जा सकता। चित्त का निरोध कैसे हो? चित्त निरोध की विधि-विशेष का नाम यज्ञ है। उस यज्ञ को कार्यरूप देना कर्म है। इस नियत कर्म का आचरण ही धर्म है। इस गीतोक्त साधन के आरम्भ का नाश नहीं होता। इसका स्वल्प आचरण भी जन्म-मृत्यु के महान भय से उद्धार करके ही छोड़ता है। इसे करनेवाला शिथिल प्रयत्नवाला साधक भी अभ्यास करते-करते अनेक जन्मों के प्रयास से वहीं पहुँच जाता है जिसका नाम परम गति है, परम धाम है। जब हर जन्म में वही गीतोक्त साधन करना है तो स्पष्ट है कि धर्म अपरिवर्तनशील है, धर्म कभी बदलता नहीं। धर्म कभी नष्ट नहीं होता। **'इति गुह्यतमं शास्त्रम्' (गीता, 15/20)**– गीता अपने में परिपूर्ण शास्त्र है। इसकी शिक्षाओं पर चलकर आप सब कैवल्य ज्ञान, परम श्रेय को प्राप्त कर लेंगे।

भगवान को भजने के लिए किसी का बहुत पुण्यात्मा होना आवश्यक नहीं है। समाज में प्रायः सुनने को मिलता है कि यह तो बहुत पापी है, यह मन्दिर में न जाय, इसके जाने से मन्दिर अपवित्र हो जायेगा, यह कुएँ या तालाब पर न जाय, इसके छूने से जलस्रोत अशुद्ध हो जायेगा; यह अछूत है, यह शूद्र है वेद-वाक्य न पढ़े। विचारणीय है कि कुआँ, तालाब, मन्दिर या मकान गरीब लोग बनाते हैं और जब बनकर तैयार हो जाता है तो सम्पन्न लोग मालिक बन बैठते हैं, कहते हैं– भाग अछूत कहीं का! यहाँ आ गया। यह तो संसार की रीति है कि जब पेट भरने लगता है तो आँखें टेढ़ी हो जाती हैं। संसार में अमीरी-गरीबी लगी रहती है किन्तु इससे नस्ल तो नहीं बदल जाती। लोगों ने इसे धर्म से जोड़ समाज को बहिर्मुखी कर दिया, जनता बाहर धर्म ढूँढ़ने लगी और आज भी ढूँढ़ ही रही है। इसका समाधान है भगवान

श्रीकृष्ण के श्रीमुख की अपौरुषेय वाणी आदिशास्त्र गीता! धर्म तो अन्तःकरण की वृत्तियों के उतार-चढ़ाव पर निर्भर करता है। भगवान की साधना-पद्धति महापुरुषों के क्षेत्र की वस्तु है लेकिन शिक्षकों ने बुद्धि से गणित लगाकर, धर्म का निर्णय देकर समाज को विखण्डित कर दिया, घृणा और द्वेष की दीवार बना दी। किन्तु भगवान के यहाँ ऐसा कोई भेदभाव नहीं है। गीता (9/29) में है कि '**समोऽहं सर्वभूतेषु.....**'– अर्जुन! मैं सबमें सम हूँ, मेरा न तो कोई शत्रु है न मित्र है। अनन्य भाव से जो मुझे भजता है, वह मुझमें है और मैं उसमें हूँ – यही मेरा एकमात्र सम्बन्ध है। अतः भगवान को भजने के लिए पुण्यात्मा होने की कोई शर्त नहीं है।

भगवान कहते हैं– '**अपि चेत्सुदुराचारो.....**' *(गीता, 9/30)* अर्जुन! अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मुझे भजता है, वह साधु मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय से लग गया है अर्थात् यथार्थ में जो सत्य है, परम तत्व परमात्मा है, उसका निश्चय वहाँ स्थिर हो गया है। किन्हीं अंशों में उसने सत्य को साधा है इसलिए साधु मानने योग्य है। इतना ही नहीं, '**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा**' *(गीता, 9/31)*– वह दुराचारी शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है, वह परम धर्म परमात्मा को धारण करने की क्षमतावाला हो जाता है और सदा रहनेवाली शान्ति को प्राप्त कर लेता है। अर्जुन! निश्चयपूर्वक ध्रुवसत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। अस्तु, धर्मपालन के लिए पुण्य की पूँजी आवश्यक नहीं है। कोई पापी ही क्यों न हो, गीतोक्त साधना समझकर श्वास के रहते-रहते दो कदम चल भर दे तो यद्यपि आज उसे देखने को मोक्ष नहीं मिला किन्तु मोक्ष का आरक्षण भली प्रकार हो गया। इसलिए धर्मात्मा वह है जो एक परमात्मा में दृढ़ संकल्प होकर श्रद्धा से लग गया हो। जो गीतोक्त नियत कर्म का आचरण करता है, वह धर्मात्मा है; और यह धर्म सबके लिए सुलभ है।

● (18) साधना की सही विधि अर्थात् गीतोक्त विधि से साधना करनेवालों की हर कामना भगवान तत्काल पूर्ण करते हैं। भगवान कहते हैं कि

मुझे पूजकर लोग स्वर्गिक सुखों की कामना करते हैं, मैं उन्हें देता हूँ। स्वर्ग कोई इतनी बड़ी वस्तु नहीं है जिसके लिए तपस्या की जाय। पुण्य करनेवाले लोग ही स्वर्ग नहीं जाते, राक्षसी वृत्तिवाले दानव-दैत्य भी वहाँ पहुँचते थे। वे देवताओं को मारकर भगा देते थे, स्वर्ग पर अधिकार कर लेते थे। देवराज इन्द्र पृथ्वी के राजाओं की छत्रछाया में स्वर्ग का शासन करते थे। देवताओं की प्रार्थना पर धरती के शूरवीर अर्जुन ने उन निवातकवच असुरों को परास्त कर दिया जिनसे देवलोक त्रस्त था। जब देवताओं का यह पराक्रम है तो उनसे भी उत्तरोत्तर अल्प क्षमतावाले राक्षस, भूत-पिशाच, प्रेत, बेताल, शैतान इत्यादि आसुरी योनियों के क्षुद्र जीवों से भयभीत होने या इनकी पूजा करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सन्त कबीर कहते हैं– **'ये भ्रम भूत सकल जग खाया। जिन-जिन पूजा ते जहँड़ाया॥' (सबद, 105/1)–** भूत का भ्रम सारे संसार को खा रहा है। जिन-जिन ने इनकी पूजा की, यह उन्हीं को ठगता है, खा जाता है। **'कहे कबीर सुनो नर लोई, भूतवा के पूजले भूतवा होई॥' (सबद, 105/4)** अर्थात् भूतों की पूजा करनेवाले भूतों को ही प्राप्त होते हैं। कबीर साहब गीता ही तो पढ़ रहे हैं– **'भूतानि यान्ति भूतेज्या'** ***(गीता, 9/25)***

जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर॥

(मानस, 2/167)

जो लोग भगवान को छोड़कर भयानक भूत-प्रेतों को भजते हैं, भरत जी कहते हैं, हे माता! यदि इस षड्यन्त्र में मेरा हाथ हो, तो मुझे उनकी दुर्गति प्राप्त हो अर्थात् भूतों को पूजनेवाले घोर दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार परमात्मा की तुलना में देवी-देवताओं की शक्ति उसी प्रकार नगण्य और हास्यास्पद है जैसे सैकड़ों करोड़ों जुगनुओं को सूर्य के समकक्ष कहना। फिर तो देवताओं से भी गये-बीते, नारकीय यातनाओं को भोग रहे भूत-पिशाच के पूजकों को क्या कहा जाय? पूज्य गुरु महाराज

कहा करते थे– 'हरि भक्तन के पास न आवे भूत प्रेत पाखण्ड।' परमात्मा के नाम ओम् अथवा राम का जप करनेवालों को या गीता पढ़नेवालों को ये क्षुद्र जीव उसी प्रकार स्पर्श नहीं कर सकते जैसे ऊर्जा प्रवाहित विद्युत केन्द्रों के स्पर्श का दुस्साहस कोई नहीं करता। अधम योनि में पड़े हुए ये जीव उद्धार के लिए भगवान के भक्तों से गिड़गिड़ाते हैं, प्रार्थना करते हैं। जहाँ गीता की पुस्तक रखी होती है या गीता का पाठ होता है, वहाँ विघ्न बाधायें, कुग्रहों के अरिष्ट, जादू, टोना-टोटका, भूत-प्रेत जैसे भ्रम सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं। यदि किसी को ऐसी शंका है भी तो सभी राक्षसी उपद्रव गीता में वर्णित भगवान की महिमा सुनते ही दूर भाग जाते हैं; हर्ष, उल्लास और उत्साह का वातावरण छा जाता है।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥ ***(गीता, 11/36)***

हे हृषिकेश! आपकी कीर्ति से संसार हर्षित होता औरअनुराग को प्राप्त होता है। आपकी महिमा से भयभीत हुए राक्षस दिशाओं में भाग जाते हैं और सिद्धों के समुदाय आपकी महिमा को देखकर नमस्कार करते हैं। यही भाव रामचरितमानस में है–

सीम की चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥
(मानस, 1/125/8)

सर्वसमर्थ भगवान जिसकी रक्षा कर रहे हों, उसकी सीमा में भला कौन प्रवेश कर सकता है? अर्थात् भगवान के भक्तों को भूत-प्रेत छू भी नहीं सकते।

● (19) गीता के अनुसार संसार में पुरुष दो प्रकार के हैं– देवताओं जैसा और असुरों जैसा। वास्तव में मनुष्य की वृत्ति दो प्रकार की है। जब हृदय में दैवी सम्पद् कार्य करती है तो मनुष्य देवता है और आसुरी सम्पत्ति कार्य करती है तो वह असुर है। **'दैवी सम्पद्विमोक्षाय' (गीता, 16/5)-**

दैवी सम्पद् परम कल्याण के लिए है। आसुरी सम्पदा अधोगति और अनन्त योनियों में गिराने के लिए है। अर्जुन! मनुष्य का स्वभाव दो प्रकार का होता है। आपका एक सगा भाई असुर और दूसरा देवता हो सकता है। हृदय में दैवी सम्पद् का उत्कर्ष करना ही वास्तविक देव-पूजा है। अर्जुन! तुम दैवी सम्पद् की उन्नति करो। वे देवता तुम्हारी उन्नति करेंगे । इस प्रकार परस्पर उन्नति करते हुए परम श्रेय को प्राप्त कर लो। 'तैर्दत्तान्' (गीता, 3/12)– एकमात्र वही देनेवाले हैं। भगवान को प्राप्त करने की यही विधि है।

गीता (7/20) में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– कामनाओं से जिनकी बुद्धि आक्रान्त है ऐसे मूढ़बुद्धि अविवेकीजन अन्य-अन्य देवताओं की पूजा करते हैं। वे जहाँ पूजा करते हैं वहाँ देवता नाम की कोई वस्तु तो है ही नहीं। भूत-भवानी, सूर्य-चन्द्रमा, नदी-नाला, पेड़-पौधा जहाँ कहीं भी श्रद्धा झुक गयी, भगवान कहते हैं कि वे मेरी ही पूजा करते हैं, उनकी उस देव-श्रद्धा को मैं ही पुष्ट करता हूँ, मैं ही फल का विधान करता हूँ। फल भी तत्काल मिलता है जो भोगने में आता है और नष्ट हो जाता है। वह फल ही किस काम का जो मिला और नष्ट हो गया। जब फल मिल ही जाता है तो इन पूजाओं से नुकसान ही क्या है? भगवान कहते हैं– यह मेरी पूजा ही है। अपनी समझ से वे मुझ सर्वशक्तिमान को ही ढूँढ़ रहे हैं किन्तु उनकी पूजा अविधिपूर्वक है इसलिए वे नष्ट हो जाते हैं। पूजन नष्ट न हो, इसका उपाय क्या है? भगवान कहते हैं– वह विधि है हम दोनों का संवाद गीता! इस गीताशास्त्र को मेरे भटके हुए भक्तों में जो कहेगा, उसके द्वारा मैं पूजित हो जाऊँगा, वह मुझे प्राप्त हो जायेगा।

रही बात मनुष्य की भूख कैसे मिटे, कामनायें कैसे पूरी हों? तो भगवान कहते हैं कि मुझे भजकर लोग स्वर्ग तक की कामना करते हैं, मैं उन्हें देता हूँ, वे इन्द्रपद को विभूषित करते हैं– **'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (गीता, 9/21)**– वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। जहाँ

से चले थे, वहीं गिर गये। फिर दरिद्र के दरिद्र! नश्वर ही तो माँगा था। नश्वर फल को तो जाना ही था, वह भोगने में आ गया किन्तु मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं होता; क्योंकि उसने गीतोक्त विधि से भजकर मुझसे ही माँगा था। वस्तु का भोग सामने से हटा, फिर साधना यथावत् चलने लगेगी। अर्जुन! इस नियत कर्मरूपी धर्म में आरम्भ का नाश नहीं होता। यह लक्ष्य को विदित कराकर ही दम लेता है।

अर्जुन ने प्रश्न किया कि शास्त्रविधि को छोड़कर अन्य-अन्य विधियों से जो भजते हैं, उनकी क्या गति है? भगवान ने बताया कि ऐसे लोगों के जीवन में न सुख है न सिद्धि, और न परम गति ही है; न तो इस लोक में है और न मरने के उपरान्त ही है। गीतोक्त नियत कर्म के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता है ही नहीं। भगवान कहते हैं– अर्जुन! तुम्हारे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में यह शास्त्र ही प्रमाण है।

अर्जुन ने प्रश्न किया– **'ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विता' (गीता, 17/1)** इस शास्त्रविधि को छोड़कर यदि कोई श्रद्धा से अन्य-अन्य विधियों से भजता है तो किस गति को प्राप्त होता है? भगवान ने कहा– अर्जुन! पुरुष श्रद्धा का पुतला है। एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसमें श्रद्धा न हो। शास्त्रविधि से रहित भजनेवालों की श्रद्धा तीन प्रकार की होती है। सात्त्विकी लोग देवताओं की, राजसी लोग यक्ष-राक्षसों की और तामसी लोग भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं, घोर तप तपते हैं, खून-पसीना एक कर देते हैं लेकिन वे शरीररूप में स्थित भूत-समुदाय को और अन्तर्यामी रूप में स्थित मुझ परमात्मा को कृश करनेवाले हैं। इन तीनों को तू असुर जान। अर्जुन! भजन तो वे परमात्मा का करना चाहते हैं किन्तु अविधिपूर्वक करने से परमात्मा से दूरी पैदा होती जा रही है। भूत माने शरीर! शरीर का कारण है संस्कार! उन संस्कारों को दुर्बल कर रहे हैं अर्थात् आवागमन के संस्कारों की संख्या बढ़ा रहे हैं। यही शरीररूप में स्थित भूत-समुदाय को कृश करना है। जीवात्मा को भजन से निर्मल होना चाहिए, भगवान के समीप पहुँचना चाहिए लेकिन

यहाँ दूरी बढ़ रही है। तामसी श्रद्धावाले शरीर में अनुरक्त रहते हैं। शरीर में है मामा का परिवार, अपना परिवार, ससुराल का परिवार, सुहृद इत्यादि। यहीं तक शरीर की सीमा है। इसके अतिरिक्त प्रेत अर्थात् हमारे पूर्वज! उन्होंने क्या किया, उनकी कीर्ति और यश से प्रेरणा लेना प्रेत-पूजा है। हमारे स्वजन जिनके प्राणों का अन्त हो चुका है, उनको श्रद्धांजलि देना, उनके गुणों एवं कीर्तिमान को कायम रखने का प्रयास पितर-पूजन है। इनसे उन्नत राजसी श्रद्धावाले यक्ष-राक्षसों की पूजा करते हैं। यक्ष अर्थात् जिनसे यश की वृद्धि हो, जो शौर्य प्रदान करे और राक्षस– जिनसे सुरक्षा हो, लोग वहाँ दौड़ते ही रहते हैं। यही है यक्ष-राक्षसों की पूजा। इधर शरीर छूटा, दूसरा वस्त्र तैयार। वेदवती का शरीर छूटा तो सीता के रूप में आ गयी। दशरथ स्वर्ग चले गये। कल्पित भूत-शरीरों की सम्भावना नहीं पायी जाती। भगवान कहते हैं, तामसी गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त पुरुष पशु-पक्षी इत्यादि योनियों में जन्म पाते हैं। मरने के बाद कोई कहाँ जाता है?–यह तो भजन करके आप जानेंगे। पंचमहाभूतों से सृष्टि और शरीर की संरचना हो गयी। वे पंचभूत आपकी पकड़ में नहीं आयेंगे। पाँचों इन्द्रियों के रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श का जब आप दमन कर लेंगे तो पंचभूत भी पकड़ में आ जायेंगे और इनके संयम के साथ भगवान की अनुभूति सुलभ हो जायेगी। साधना के बिना शरीर कभी नहीं मरता। शिक्षा न होने से मूर्ख भूत-भवानी पूजते हैं, शिक्षित देवी-देवता पूजते हैं। राजस्थान में पुष्करणा ब्राह्मणों का एक वर्ग है। उनकी बस्ती में यदि 100 लड़के पैदा हो गये तो वे 100 मन्दिर बनवा डालेंगे और उनमें एक-एक लड़के को मन्दिर की पूजा में नियुक्त कर देंगे। इसलिए मूर्खों का भूत, पढ़े-लिखों का देवता! भगवान का परिचय करानेवाले तो विरले महापुरुष ही होते हैं।

● (20) अपने उपदेश का समापन करने से पूर्व भगवान ने कहा– जानते हो अर्जुन! ईश्वर कहाँ रहता है?, **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'** (गीता, 18/61) अर्थात् ईश्वर सभी भूतों (प्राणियों) के हृदय में निवास करता है। जब वह इतना समीप है तो लोग देखते क्यों नहीं? भगवान

कहते हैं– मायारूपी यन्त्र में आरुढ़ होकर भ्रमवश लोग भटकते ही रहते हैं इसलिए नहीं देख पाते। जब ईश्वर हृदय में है तो हम किसकी शरण जायँ? कहाँ ढूँढ़ें? भगवान कहते हैं– **'तमेव शरणं गच्छ'** (गीता, 18/62)– अर्जुन! उस हृदयस्थित ईश्वर की शरण जाओ; **'सर्वभावेन'**– थोड़ा भाव देवी में, थोड़ा देवता में, कभी संकटमोचन में तो कभी पशुपतिनाथ में, ऐसा नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भाव से, मन-क्रम-वचन से हृदयवाले ईश्वर की शरण में जाओ। मान लें, कोई चला गया तो उससे लाभ? भगवान कहते हैं– **'तत्प्रसादात्परां शान्तिं'**– उसकी कृपा-प्रसाद से तुम परम शान्ति को, शाश्वत धाम को प्राप्त कर लोगे।

लेकिन हृदयस्थ ईश्वर को हमने देखा नहीं, उसकी शरण जायँ तो कैसे? इस पर भगवान गीता (18/64) में कहते हैं कि इससे भी अति गोपनीय रहस्ययुक्त मेरे वचन को सुन कि **'मन्मना भव मद्भक्तो' (गीता, 18/65)**– अर्जुन! तू मुझमें मन लगा, मेरा भक्त हो, मेरा अर्चन कर, मुझे नमन कर, मैं सत्य कहता हूँ तू मुझमें निवास करेगा। अर्जुन ने पहले कहा था कि जाति-धर्म, कुल-धर्म! भगवान कहते हैं– **'सर्वधर्मान्यपरित्यज्य' (गीता, 18/66)** इन सभी धर्मों का परित्याग कर एकमात्र मेरी शरण हो जा। मैं तूझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा।

पहले के दो श्लोकों में भगवान ने कहा कि ईश्वर हृदय में है, उसकी शरण में जा। उससे अग्रेतर दो श्लोकों में कहा कि इससे भी रहस्यमय वचन सुन कि तू मेरा चिन्तन कर, मेरी शरण में आ। अन्ततः भगवान कहना क्या चाहते हैं?

वास्तव में परमात्मा तो हृदय में ही निवास करते हैं। अध्याय 13/17 में कहा कि ज्योतियों का भी ज्योति वह परमात्मा सबके हृदय में रहता है। जब कभी किसी ने परमात्मा को पाया तो हृदय-देश में पाया। उस हृदयस्थ ज्योतिर्मय परमात्मा को प्राप्त करने की विधि वर्तमान में जो भगवत्स्वरूप को प्राप्त महायोगेश्वर हैं, उनके द्वारा ही सुलभ है। भगवान श्रीकृष्ण भी भगवत्ता को

प्राप्त महायोगेश्वर हैं। वही होते हैं सद्गुरु! '**गुरुर्गरीयान्**' (गीता, 11/43) वे गुरुओं के भी परम गुरु हैं अर्थात् सद्गुरु। इन महापुरुषों की शरण जाना चाहिए। प्राप्ति के पश्चात् महापुरुषों का रहन-सहन, उनका उठना-बैठना-बोलना सब कल्याणकारी होता है। वह भूमि मोक्षदायी होती है। उनकी हर चेष्टा मंगलमयी होती है–

सम्पूर्णं जगदेवनन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा
गाङ्गम् वारि समस्त वारि निबहाः पुन्याः समस्ता क्रियाः॥
वाचः प्राकृत संस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि॥

(धन्याष्टक, श्रीशंकराचार्य)

जिसने परब्रह्म का साक्षात् कर लिया है, उसके लिए समस्त संसार नन्दन वन है, समस्त वृक्ष कल्पवृक्ष हैं, सम्पूर्ण जल गंगाजल है, उसकी सभी क्रियाएँ पवित्र हैं, उसकी वाणी प्राकृत हो अथवा संस्कृत, वेद की सारभूत हैं, उसके लिए सम्पूर्ण भूमण्डल काशी ही है और उसकी सभी चेष्टाएँ परमात्ममयी हैं। भगवान की महिमा ऐसे संतों द्वारा ही विदित होती है–

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा॥
राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥

(मानस, 7/119/16-17)

भगवान यदि सिन्धु हैं तो सन्त मेघमाला हैं, उन्हीं से भक्तिरूपी जल ग्रहण कर समुद्र के खारे जल को ग्राह्य बनाकर जन-जन तक पहुँचाते हैं। सन्त ही भगवान की सुगन्ध को दिग्दिगन्त तक प्रसारित करते हैं। भगवान तो निरपेक्ष सत्ता हैं। उन्हें खोज निकालने की विधि संत अर्थात् सद्गुरु हैं। संत वे हैं जिनके चतुर्दिक वातावरण शान्त हो, जिनके पास जाने से मन को शान्ति मिलती हो, संयम-प्रधान सात्त्विक विचारों का उदय होता हो, विषय-वासनाओं के त्याग की प्रेरणा मिलती हो, भगवान के चिन्तन-मनन में जो

समय देते हों, सादा जीवन-उच्च विचार की मर्यादाओं का पालन करते हों, उनकी रहनी में, उनके उपदेशों में गीता का ही संदेश मुखरित होता हो। ऐसे ही सन्तों से आपका कल्याण है। अतः गीताशास्त्र का पठन-पाठन, श्रवण-मनन हर जाति, हर देश, हर सम्प्रदाय के स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध, साक्षर-निरक्षर, अज्ञ-सुविज्ञ, गृहस्थ-सन्न्यासी, आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु आदि समस्त समाज के लिए है। यह विशेषतः उनके लिए है जो धर्म को विशुद्ध रूप में, मूल रूप में जानना, समझना और उस पर चलना चाहते हैं। एतदर्थ 'यथार्थ गीता' का सम्यक् अनुशीलन करें।

॥ बोलिये, श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय॥

मूर्तिपूजा की उपादेयता

एक परिवार में एक बहू आयी। सास बहुत खुश थी। उसने सुन रखा था कि आने वाली बहू बहुत विद्वान है, होशियार है। उसने सोचा कि बहू को देवी मन्दिर में दर्शन करा दें, गोद भरने की मनौती मान लें। बहू ने सुना तो सोचा कि घर में सिकुड़-सिमटकर बैठे-बैठे ऊब गये, बाहर कुछ घूम लेंगे। 15-25 औरतों के साथ सास बहू को मन्दिर ले चली। सीढ़ियों के दोनों ओर कुत्तों की प्रतिमाएँ थीं। हट्टे-कट्टे कुत्तों को देखते ही बहू चीखकर सास से चिपक गयी। सास लड़खड़ा गयी। बहू ने कहा– अरे मावा, कुत्ता! कुत्ता काटा!! कुक्कुर, कुक्कुर!!!

बुढ़िया बिगड़ी कि विवाह करानेवाले उस अगुवा का सर्वनाश हो जाय; बेईमान कहता था कि बहू समझदार है लेकिन लगता है इसे कहीं घुमाया-दिखाया नहीं। वह डाँटते हुए बोली– गँवार कहीं की! देखती नहीं कि ये पत्थर के हैं। कहीं पत्थर का कुत्ता भी काटता-भूँकता है। बहू ने कहा– अच्छा माताजी! यदि यह पत्थर का है तब तो यह नहीं काटेगा। सास ने सिर पीट लिया– हे भगवान! यह बिना बुद्धि की लड़की हमारे गले पड़ गयी।

दस-पाँच सीढ़ियाँ चढ़ने पर मन्दिर के द्वार के सामने मुँह खोले, पंजा उठाये शेर को देख भयभीत बहू उछलकर सास के ऊपर गिर पड़ी। सास भी सीढ़ियों पर गिर गयी। माथे पर बड़ा-सा गूमड़ा निकल आया। वह बहू चीख पड़ी– मावा, शेर! शेर फाड़कर खा जायेगा। सास अगुवा को कोसने लगी कि आज वह मिल जाता तो उसकी मूँछें उखाड़ लेती। कहता था कि बहू बड़ी गुनी है, जानकार है लेकिन इसने तो कुछ देखा ही नहीं। सास बोली– यह पत्थर का है रे! भला पत्थर कैसे खा लेगा? देख.... सास ने शेर के मुँह में हाथ डालकर दिखा दिया। बहू बोली– समझ गयी माताजी! यह पत्थर का

शेर है, कुछ कर नहीं सकता। सास बोली, पागल कहीं की! पत्थर का शेर भी काटता-खाता है क्या? हे भगवान! हमारे बच्चे का जीवन-निर्वाह इस मूर्ख के साथ कैसे होगा?

सास बहू को लेकर मन्दिर के गर्भगृह में गयी। वहाँ पत्थर की एक देवी-मूर्ति थी। सास ने कहा– बेटी! यह हलवा-पूड़ी देवी को खिलाओ। यह तुम्हारी गोद भरेंगी, धन-धान्य से सम्पन्न करेंगी। बहू बोली–

अब तक हमही रहे बउरान,
कि बूढ़ा मावा अब तूँ बउरानिउ ना।

अर्थात् अभी तक तो आप हमें ही पागल कह रहीं थीं, अब आप भी पागल हो गयी हैं क्या? सास ने कहा– क्या बक रही है? बहू बोली–

पथरे क कूकुर भूँकत नाहीं, नहीं बाघ गुर्राई।
तब पथरे की देवी मावा, कैसे क हलवा खाई॥
कि बूढ़ा मावा अब तूँ बउरानिउ ना॥

जब पत्थर का कुत्ता भूँक नहीं सकता, काट नहीं सकता, पत्थर का बाघ खा नहीं सकता तो पत्थर की देवी हलुवा कैसे खा लेगी? सास ने समझाया– देख, पंडित बाबा ने इसके अन्दर प्राण-प्रतिष्ठा किया है, जीव पहना दिया है! बहू ने कहा–

जवन मंत्र पढ़ि पंडित बाबा पथरे में जिउ पहिराई।
तवन मंत्र पढ़ि पंडित बाबा पुरखा काहे न लिये जियाई॥
कि बूढ़ा मावा अब तूँ बउरानिउ ना॥

अर्थात् जिस मंत्र को पढ़कर पंडितजी ने पत्थर में जान डाल दिया, वही मंत्र पढ़कर उन्होंने अपने बाप-दादाओं को क्यों नहीं जिला दिया? जिनका शरीर अभी ठण्डा नहीं हुआ, जो गड़ी सम्पत्ति बच्चों को बता नहीं सके, उन्हें क्यों नहीं जिला दिया? सास ने कहा– देखो विश्वास किया जाता है, तभी फल मिलता है। बहू बोली–

जवन वस्तु जहवाँ पै होइहैं, तहवाँ खोजो भाई।
विस्वास किये पानी में मट्ठा मारे घिव निकले न भाई॥
कि बूढ़ा मावा अब तूँ बउरानिउ ना॥

अर्थात् जो वस्तु जहाँ है, वहीं खोजनी चाहिए। कितना भी विश्वास करके मथानी लेकर पानी मथो, क्या उसमें घी निकलेगा? माताजी! यह कुत्ता, शेर और देवी एक ही कलाकार की रचनाएँ हैं–

जवन मनइया कुकुर के बनाएसि, उहइ बाघ बनाई।
उहइ मनइया देवी के बनएसि, लतवा से लतियाई॥
कि बूढ़ा मावा अब तूँ बउरानिउ ना॥

जिस कारीगर ने एक पत्थर का कुत्ता बनाया, एक पत्थर को शेर का आकार दिया, उसी ने देवी को गढ़ा है। कारीगर जब पत्थर गढ़ते हैं तो उसे पैरों से दबाकर, कभी पानी लगाकर, छेनी-हथौड़ी से ठोंक-पीटकर मूर्ति बनाते हैं।

रही पतोहिया चातुर भैया, बूढ़ा के रही समुझाई।
कौनउ बस न चला बूढ़ा का, बूढ़ा चली टिन्नाई॥
कि बूढ़ा मावा अब तूँ बउरानिउ ना॥

जब कोई उत्तर न सूझा तो सास बिगड़ खड़ी हुई कि आज आयी है और हमार माई बन के बैठ गयी। देखत हौ, कइसन पटर-पटर बतियावत है। क्रोध से तमतमाते हुए सास घर चली गयी। वास्तव में मूर्तिपूजा की एक सीमा है–

मन्दिर है हरि की परछाईं, श्रद्धा-सुमन चढ़ाई।
घट मन्दिर जब पट खुल जाई, रहो बचन सरनाई॥
कि बूढ़ा मावा तूँ बउरानिउ ना॥

मन्दिर और मूर्तियाँ हमारी प्राथमिक पाठशालाएँ है, श्रद्धा जगाने के आरम्भिक केन्द्र हैं। यह हरि का प्रतिबिम्ब हैं। अबोध शिशुओं को इन मन्दिर-मूर्तियों तक ले जाकर मातायें कहती हैं कि यहाँ अगरबत्ती जलाओ, वहाँ प्रणाम करो, यह जरूरी है। प्रथम गुरु तो मातायें ही होती हैं। यहाँ

श्रद्धा-सुमन चढ़ाना चाहिए लेकिन जब हृदयरूपी मंदिर के किवाड़ खुल जायँ अर्थात् जब भगवान हृदय से बोलने लगें, उस समय देखना चाहिए कि भगवान चाहते क्या हैं, कहते क्या हैं, इसे समझते जायँ और चलते जायँ। **'रहो बचन सरनाई'**– उस वचन का आश्रय लेकर चलना चाहिए। जब तक भगवान हृदय से रथी नहीं होते, नाम का जप और संत-महात्माओं की सेवा श्रद्धापूर्वक करते रहना चाहिए।

वास्तव में जिस देवी-देवता की लोग बाल्यकाल से पूजा-अर्चना करते आये हैं, उन्हें छोड़ नहीं पाते कि कहीं वे देवता नाराज न हो जायँ, कहीं संकट में न डाल दें। उनका ऐसा सोचना स्वाभाविक है किन्तु धर्म की सही जानकारी और सम्पूर्ण समाधान के लिए देखें भगवान श्रीकृष्णोक्त गीता की यथावत् व्याख्या 'यथार्थ गीता'। संतों की सेवा तथा सत्संग से मार्ग प्रशस्त होता जायेगा– '**प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।**' (मानस, 3/34/8)

॥ बोलिये, श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

विचारणीय

'यथार्थ गीता' नामकरण क्यों?– कुछ लोगों ने जानना चाहा है कि आश्रम से प्रकाशित गीता की टीका का नाम 'यथार्थ गीता' क्यों है? क्या अन्य टीकायें अयथार्थ हैं? अब, यह तो जिन-जिनने टीकायें की हैं, वे जानें या कुछ एक उपलब्ध प्रसिद्ध टीकाओं को पढ़कर आप स्वयं निर्णय लें! महाभारत युद्ध के पश्चात् विगत 5200 वर्षों की अवधि में गीता के लाखों प्रवक्ता हुए, हजारों टीकायें हुईं किन्तु गीता के अनेक प्रश्न ऐसे हैं जिन पर सुविज्ञजनों ने निर्भ्रान्त निर्णय नहीं दिया जिस पर समाज आश्वस्त होकर चल सके। कर्म, वर्ण, वर्णसंकर, धर्म, यज्ञ, यज्ञ करने का अधिकार, युद्धक्षेत्र, युद्ध, शरीर-यात्रा, पाप-पुण्य, देवपूजा, ईश्वर का निवास, अवतार, पुनर्जन्म, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग, मनुष्यों में अधम कौन?, शास्त्र इत्यादि पन्द्रह-पच्चीस प्रश्न ऐसे हैं जो आज भी अनुत्तरित हैं। उदाहरण के लिए– एक आदरणीय आचार्य ने कर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि पुरोहित और यजमान के बीच का व्यवहार कर्म है अर्थात् पुरोहित कहता है कि लो पैंती पहनो, यहाँ सिन्दूर चढ़ाओ, वहाँ चावल छिड़को, अब दक्षिणा दो! हो गया कर्म! उसी प्रकार एक राजनेता ने कर्म को समझाते हुए लिखा– विदेशी वस्त्र मत बेचो, नहीं तो तुम सकाम कर्मयोगी हो जाओगे; स्वदेश में निर्मित वस्तु बेचो तो निष्काम कर्मयोगी कहलाओगे। जबकि गीता में है कि **'तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्'** (गीता, 4/16) अर्थात् गीता का कर्म ऐसी वस्तु है जिसे करने से अशुभ अर्थात् संसार-बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। क्या कपड़ा बेचने से या कर्मकाण्ड करने से संसार से मुक्ति मिल जायेगी?

इसी प्रकार वर्ण के विषय में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि मैं हिन्दू परिवार में जन्मा, इसमें मेरा वश नहीं था किन्तु हिन्दू रहते हुए मरूँगा नहीं; मैं ईसाई होने जा रहा हूँ। महात्मा गाँधी जी ने उनसे कहा कि आप धर्म न

बदलें। अम्बेडकर जी ने पूछा– हिन्दू धर्म में यह जाति-व्यवस्था क्यों है? गाँधी जी ने कहा कि गीता में है– 'चातुर्वर्ण्यम् मया सृष्टम्'– वर्ण तो भगवान ने बनाया है, यह तो रहेगा। डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि यह व्यवस्था रहेगी तो मैं इस धर्म में नहीं रहूँगा। गाँधी जी के आग्रह पर उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। जो गाँधी जी गीता को अपनी माँ कहते थे, वह भी गीता की वर्ण-व्यवस्था को समझ नहीं पाये। वे नहीं समझ पाये कि गीता के वर्ण साधना के आन्तरिक और क्रमोन्नत सोपान हैं। इसी प्रकार बहुत से विद्वानों ने इन प्रश्नों का स्पष्टीकरण नहीं किया। 'यथार्थ गीता' इन सभी प्रश्नों का समाधान यथावत् प्रस्तुत करती है इसलिए इसका नाम 'यथार्थ गीता' है। अब एक भी प्रश्न अनुत्तरित नहीं है। कदाचित् कहीं संदेह है तो आप प्रश्न कर सकते हैं, आपका स्वागत है।

॥ बोलिये, श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

श्रीकृष्ण जिस स्तर की बात करते हैं, क्रमशः चलकर उसी स्तर पर खड़ा होनेवाला कोई महापुरुष ही अक्षरशः बता सकेगा कि श्रीकृष्ण ने जिस समय गीता का उपदेश दिया था, उस समय उनके मनोगत भाव क्या थे? मनोगत समस्त भाव कहने में नहीं आते। कुछ तो कहने में आ पाते हैं, कुछ भाव-भंगिमा से व्यक्त होते हैं और शेष पर्याप्त क्रियात्मक हैं– जिन्हें कोई पथिक चलकर ही जान सकता है। जिस स्तर पर श्रीकृष्ण थे, क्रमशः चलकर उसी अवस्था को प्राप्त महापुरुष ही जानता है कि गीता क्या कहती है। वह गीता की पंक्तियाँ ही नहीं दुहराता, बल्कि उनके भावों को भी दर्शा देता है; क्योंकि जो दृश्य श्रीकृष्ण के सामने था, वही उस वर्तमान महापुरुष के समक्ष भी है। इसलिये वह देखता है, दिखा देगा; आपमें जागृत भी कर देगा, उस पथ पर चला भी देगा।

'पूज्य श्री परमहंस जी महाराज' भी उसी स्तर के महापुरुष थे। उनकी वाणी तथा अन्तःप्रेरणा से मुझे गीता का जो अर्थ मिला, उसी का संकलन '**यथार्थ गीता**' है।

– स्वामी अड़गड़ानन्द

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन (रेल्वे सब-वे के पास),
अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत
दुरध्वनी - ०२२-२८२५५३००
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com